समयसार

अनुक्रमणिका

मंगलाचरण

001) सिद्धों को नमस्कार

पीठिका

002) स्वसमय और परसमय का लक्षण
003) 'समय' की सुन्दरता
004) एकत्व की दुर्लभता
005) आचार्य की प्रतिज्ञा
006) शुद्धात्मा का स्वरूप
007) ज्ञानी आत्मा शुद्ध ज्ञायक है
008) व्यवहार की आवश्यकता
009-010) श्रुतकेवली
011) आत्म-भावना की प्रेरणा
012) आत्म-भावना से शीघ्र मुक्ति

नव-पदार्थ अधिकार

013) निश्चयनय भूतार्थ है और व्यवहार नय अभूतार्थ है

जीव अधिकार

014) व्यवहार नय भी प्रयोजनवान है
015) शुद्धनय से जानना सम्यक्त्व है
016) शुद्धनय का लक्षण
017) जो आत्मा को देखता है वही जिनशासन को जानता है
018) ध्यान में केवल आत्मा
019) रत्नत्रय ही आत्मा है
020-021) रत्नत्रय के सेवन का क्रम
022) आत्मा कब तक अज्ञानी रहता है?
023) आत्मा के बंध मोक्ष का कारण
024) निश्चय और व्यवहार से जीव का कर्तापना
025-026-027) अप्रतिबुद्ध - पर पदार्थ में अहंकार / ममकार
028-029-030) पर पदार्थ को जीव का कहना ठीक नहीं - तर्क
031) प्रश्न - आत्मा-शरीर एक नहीं तो शरीराश्रित स्तुति कैसे ?
032) व्यवहार से जीव और शरीर एक, निश्चय से नहीं
033-034) व्यवहार स्तुति निश्चय स्तुति नहीं
035) दृष्टांत - नगर का वर्णन राजा का वर्णन नहीं
036) निश्चय स्तुति - जितेन्द्रिय
037) निश्चय स्तुति - जितमोह
038) निश्चय स्तुति - क्षीणमोह
039-040) प्रतिबुद्ध द्वारा परभावों का त्याग - प्रत्याख्यान
041) मोह से निर्मम
042) धर्मादि ज्ञेय पदार्थ से निर्मम
043) मैं एक शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी

अजीव अधिकार

044-048) जीव-अजीव में एकता - मिथ्या-मत
049) जीव-अजीव में भिन्नता - मिथ्या-मत खण्डन
050) आठों कर्मों का फल -- अध्यवसान
051) अध्यवसान-भाव जीव है - व्यवहार

052-053) इस व्यवहार को दृष्टांत द्वारा समझाते हैं
054) शुद्ध जीव कैसा होता है?
055-060) शुद्ध जीव कैसा नहीं होता है?
061) व्यवहार से वर्णादि भाव जीव के, निश्चय से नहीं
062) जीव का वर्णादि के साथ संयोग सम्बन्ध
063-064-065) दृष्टांत द्वारा सम्बन्ध को बतलाते हैं
066) वर्णादि भाव के साथ जीव का तादात्म्य नहीं
067) जीव का वर्णादि से तादात्म्य में दोष
068-069) संसार अवस्था में जीव के वर्णादि से तादात्म्य में दोष
070-071) अत: नाम-कर्म का उदय जीव नहीं है
072) देह को जीव कहना व्यवहार
073) अन्तरंग गुणस्थानादि भी जीव नहीं

कर्त्ता-कर्म अधिकार

074-075) आस्रव और जीव का भेद ना जानना - अप्रतिबुद्ध / अज्ञानी
076) अब कर्त्ता-कर्म रूप प्रवृत्ति की निवृत्ति किस प्रकार होती है उसे कहते हैं --
077) ज्ञानी निर्बंध कैसे होता है ?
078) आस्रवों से निवृत्ति का उपाय
079) ज्ञान और आस्रवों से निवृत्ति का एक काल
080) ज्ञानी की पहचान
081) आत्मा पुण्य-पापादि परिणामों का कर्त्ता -- व्यवहार
082) कर्मों को जानते हुए इस जीव का पुद्गल के साथ अतादात्म्य
083) कर्मोदय के साथ अतादात्म्य
084) ज्ञानी के कर्म-फल में कर्ता-कर्म भाव नहीं
085) पुद्गल का भी जीव के साथ कर्ता-कर्मभाव नहीं
086-088) जीव-पुद्गल के निमित्त-नैमित्तिक संबंध होने पर भी कर्ता-कर्म का अभाव
089) जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व अपने परिणामों के साथ ही
090) लोक-व्यवहार ऐसा होता है
091) द्विक्रियावादियों की मान्यता दूषित
092) द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि क्यों ?
093) द्विक्रियावादी का विशेष व्याख्यान
094) शुद्ध-चैतन्य स्वभावी जीव में मिथ्या-दर्शनादि विकारी भाव कैसे ?
095) मिथ्यात्वादिक जीव अजीव कहे हैं वे कौन हैं ?
096) आत्म-भावों का कर्त्ता आत्मा और द्रव्य-कर्मादिमय पर-भावों का कर्ता पुद्गल
097) आत्मा के तीन-विकारी परिणामों का कर्त्तापना है
098) कर्म-वर्गणा योग्य पुद्गल-द्रव्य अपने उपादान से कर्म-रूप में परिणत होता है
099) वीतराग-स्वसंवेदन-ज्ञान के नहीं होने से नूतन कर्म बंध
100) ज्ञान से कर्मों का बंध नहीं होता
101-102) अज्ञान से ही नूतन कर्मों का बंध क्यों ?
103) कर्तृत्व का मूल कारण अज्ञान
104) सम्यग्ज्ञान होने पर कर्ता-कर्म भाव नष्ट
105-107) पर-भावों को भी आत्मा करता है -- व्यवहारियों का मोह
108) ज्ञानी परभाव का अकर्ता, ज्ञान का ही कर्ता
109) अज्ञानी भी पर-द्रव्य के भाव का अकर्ता
110) किसी के द्वारा परभाव किया जाना अशक्य
111) आत्मा पुद्गल-कर्मों का अकर्ता क्यों ?
112-113) 'आत्मा द्रव्य-कर्मों का कर्त्ता है' यह उपचार मात्र है
114-115) आत्मा पुद्गल कर्म का कर्त्ता-भोक्ता -- व्यवहार
116-119) पुद्गल के कथंचित परिणामी स्वभाव-पना
120-122) जीव और क्रोधादि प्रत्ययों का एकत्व नहीं
123-125) पुद्गल के कथंचित परिणामी स्वभावपना
126-130) जीव-द्रव्य में कथंचित परिणामित्व
131-133) ज्ञानी-जीव ज्ञानभाव का कर्ता

134) ज्ञानी और अज्ञानी के कर्तापन
135) ज्ञानमय या अज्ञानमय भाव से क्या होता है?
136-137) ज्ञानी के ज्ञानमय और अज्ञानी के अज्ञानमय ही भाव कैसे ?
138-139) दृष्टांत
140-144) अज्ञानी अज्ञान-मय भावों द्वारा आगामी भाव-कर्म को प्राप्त होता है
145-147) जीव का परिणाम पुद्गल-द्रव्य से पृथक् ही है
148) आत्मा में कर्म बद्धस्पृष्ट है कि अबद्धस्पृष्ट ?
149) नयविभाग जानने से क्या होता है ?
150) पक्षातिक्रान्त ज्ञानी का क्या स्वरूप है ?
151) पक्ष से दूरवर्ती ही समयसार है

पुण्य-पाप अधिकार

152) शुभाशुभ कर्म के स्वभाव का वर्णन
153) शुभ-अशुभ दोनों अविशेषता से बंध के कारण
154) शुभ-अशुभ दोनों ही कर्मों का निषेध
155-156) दोनों कर्मों के निषेध का दृष्टान्त
157) दोनों ही प्रकार के कर्म बंध के कारण होने से निषेध्य
158) अब ज्ञान को मोक्षका कारण सिद्ध करते हैं --
159-160) उस ज्ञान की विधि
161) पुण्यकर्म के पक्षपाती को प्रतिबोधन
162) परमार्थस्वरूप मोक्ष का कारण दिखलाते हैं
163) परमार्थरूप मोक्ष के कारण से भिन्न कर्म का निषेध
164-166) मोक्ष के कारणभूत दर्शन, ज्ञान और चारित्र का आच्छादक कर्म
167) कर्म स्वयमेव बंध है
168-170) कर्म का मोक्ष-हेतु-तिरोधायीपना

आस्रव अधिकार

171-172) आस्रव का स्वरूप
173) ज्ञानी के उन आस्रवों का अभाव
174) राग, द्वेष, मोह भावों के ही आस्रवपना
175) रागादिक से न मिले ज्ञानमय भाव संभव
176) ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव
177-178) ज्ञानी निरास्रव किस तरह ? उत्तर
179) ज्ञान-गुण के जघन्य-भाव परिणमन के रहते ज्ञानी निरास्रव कैसे
180-183) सभी द्रव्यास्रव की संतति के रहने पर भी ज्ञानी नित्य ही निरास्रव कैसे
184-185) ज्ञानी के राग-द्वेष-मोह नहीं अत: नवीन कर्मों का बंध नहीं
186-187) इसी का समर्थन दृष्टांत पूर्वक

संवर अधिकार

188-190) भेद-विज्ञान की अभिवन्दना
191-192) भेद-विज्ञान से ही शुद्धात्मा की प्राप्ति
193) शुद्ध आत्मा की प्राप्ति से ही संवर
194-196) संवर इस तरह से होता है
197) आत्मा परोक्ष है, फिर उसका ध्यान कैसे
199-201) संवर के क्रम का व्याख्यान

निर्जरा अधिकार

202) द्रव्य-निर्जरा का स्वरूप
203) भाव-निर्जरा का भी स्वरूप
204-205) ज्ञान-शक्ति का वर्णन
206) दृष्टांत
207) अब कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि अपने को और पर को विशेषरूप से इस प्रकार जानता है --
208) औपाधिक-भाव आत्म-स्वभाव क्यों नहीं ?
209) औपाधिक भावों की परभावता जानने का फल
210) सम्यग्दृष्टि अपने और पर के स्वभाव का ज्ञाता होता है

211-212) सम्यग्दृष्टि रागी कैसे नहीं होता? यदि ऐसा पूछें तो सुनिये --
213) ज्ञानी अनागत कर्मोदय के उपभोग की वांछा क्यों नहीं करता ?
214) इसका विस्तार करते हैं --
215) मिथ्यात्वादि अपध्यान मेरा परिग्रह नहीं
216) वह परमात्म-पद क्या है ? इसका समाधान आचार्य करते हैं --
217) अब पूछते हैं कि ज्ञानी पर-द्रव्य को क्यों नहीं ग्रहण करता ? उत्तर --
219) और क्या ?
220) मत्यादि ज्ञान विशेष एक ज्ञान सामान्य के ही रूप
222-227) इच्छा ही परिग्रह, जिसको इच्छा नहीं उसको परिग्रह नहीं
228) ज्ञानी के भोग का उदय वियोग बुद्धि पूर्वक, आगे भोगों की इच्छा नहीं
229-230) ज्ञानी के अलिप्तता के कारण कर्म-बन्ध नहीं, और अज्ञानी के लिप्तता के कारण कर्म बन्ध
231-233) अब पूर्व-बद्ध कर्मों की निर्जरा न होकर, किस प्रकार मोक्ष होगा ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं --
234-238) अब ज्ञानी के कर्म-बंध नहीं होता, उसे शंख के दृष्टांत से बतलाते हैं --
239-242) सराग-वीतराग परिणाम से बंध-मोक्ष
243) सम्यक्त्वी भय-रहित होता है
244) नि:शंकित अंग का स्वरूप
245) नि:कांक्षित अंग का स्वरूप
246-247) निर्विचिकित्सा व अमूढदृष्टि अंग का स्वरूप
248-249) उपगूहन और स्थितिकरण अंग का स्वरूप
250-251) वात्सल्य और प्रभावना अंग का धारी सम्यग्दृष्टि का वर्णन

बंध अधिकार

252-256) मिथ्या-ज्ञान श्रंगार-सहित प्रवेश कर रहा है
257-261) आगे वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव के कर्म-बंध नहीं होता है, ऐसा पांच गाथाओं से बतलाते हैं --
262-264) हिंस्य-हिंसकभाव रूप परिणमन अज्ञानी का लक्षण ज्ञानी का नहीं
265-268) सुख और दु:ख भी निश्चय से अपने ही कर्मों के उदय से होते हैं
269-270) दूसरे को जिला, मार, सुखी कर सकना ऐसी मान्यता बहिरात्मपना
271-273) पूर्व के दो सूत्र में कहा हुआ मिथ्याज्ञानरूपी भाव मिथ्यादृष्टि के बंध का कारण होता है
274) अध्यवसान से ही बंध प्राणियों को मारने अथवा न मारने से नहीं
275-276) अध्यवसाय ही पाप-पुण्य के बन्ध का कारण हैं, ऐसा दिखाते हैं
277) रागादिक-रूप परिणाम बंध का कारण होते हैं, बाह्य वस्तु नहीं
278-279) 'मैं जीवों को सुखी-दुखी, बांधता-मुक्त करता हूँ', यह मानना मूढ़ता है
280-284) इस प्रकार जो जीव दुखी होते है वे अपने पाप-कर्म के उदय से होते है, तुम्हारे विचारानुसार नहीं यह बतलाते हैं --
285-286) अध्यवसान से मोहित ही पर-द्रव्य से एकत्व करता है
287) तपोधन मोह भाव रहित
288) बाह्य वस्तुओं में संकल्प विकल्प कर्म का कारण
289) अध्यवसान के पर्यायवाची
290) निश्चयनय के द्वारा व्यवहार विकल्पों का निषेध
291-293) अभव्य जीव के अपने मिथ्या अभिप्राय के कारण सिद्धि नहीं
294-295) व्यवहार-नय व निश्चय-नय का स्वरूप
296-297) ज्ञानी के आहारकृत बन्ध नहीं
300-301) रागादि विकारी भाव कैसे बनते है ?
302) ज्ञानी जीव आस्रव का कर्त्ता नहीं होता
303-304) ज्ञानी के कर्म के उदय से राग द्वेष
305-307) ज्ञानी रागादि का अकर्ता कैसे ?

मोक्ष अधिकार

308-310) विशिष्ट भेद-ज्ञान के बल से बन्ध और आत्मा को पृथक् करना मोक्ष
311-315) इसी को और स्पष्ट करते हैं
316) आत्मा और बन्ध को भिन्न कैसे किया जाए ?
317-319) आत्मा और बन्ध के प्रथक्-करण कब होता है ?
320-322) भेद-भावना -- मैं बस जानने देखने देखने वाला
323) शुद्धात्मा मात्र ज्ञाता, पर भाव मेरे नहीं
324-326) पर भावों को अपना मानने से बन्ध और वीतरागता से मुक्ति

327) अपराध शब्द का अर्थ
328-329) परमार्थ से प्रतिक्रमण विष-कुम्भ, अप्रतिक्रमण अमृत-कुम्भ

सर्व-विशुद्ध अधिकार

330-333) अब यहाँ कहते हैं कि निश्चय से यह जीव कर्मों का कर्त्ता नहीं है --
334-335) ज्ञानावरणादि कर्म-प्रकृतियों का आत्मा के साथ जो बंध है, वह अज्ञान का ही महात्म्य है, ऐसा बताते हैं --
336-337) जब तक कर्मोदय से होने वाले रागादि-भाव को नहीं छोडे तब तक अज्ञानी अन्यथा ज्ञानी
338) कर्म-फल को भोगते रहना जीव का स्वभाव नहीं, अज्ञान भाव
339) ज्ञानी नि:श्शंक होता हुआ कर्म-फल जानता हुआ आराधना में तत्पर रहता है
340-341) अब यहाँ बताते हैं कि अज्ञानी जीव नियम से कर्मों का वेदक ही होता है --
342-343) अब इसी कर्तृत्व व भोक्तृत्व के अभाव का दृष्टांत पूर्वक समर्थन करते हैं --
344-346) अब यहाँ बताते हैं कि जो एकान्त से आत्मा को कर्ता मानते हैं उनके भी अज्ञानी लोगों के समान मोक्ष नहीं है ऐसा उपदेश करते हैं --
347-350) अब पूर्व-पक्ष के उत्तर में कथन करते हैं कि निश्चय से आत्मा का पुदगलद्रव्य के साथ में कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है, तब आत्मा कैसे कर्त्ता बनता है ?
351-354) जो करता है वही भोगता है -- द्रव्यार्थिक-नय और अन्य ही कर्ता है और अन्य ही भोगता -- पर्यायार्थिक-नय
355-359) भाव-कर्म का कर्त्ता जीव ही है
360-372) आत्मा सर्वथा अकर्ता नहीं है, कथंचित् कर्त्ता भी है
373-378) सम्यग्दृष्टियों को विषयों के प्रति राग क्यों नहीं होता
379) शब्दादि अचेतन होने से रागादिक की उत्पत्ति में नियामक कारण नहीं
380-386) व्यवहार से कर्त्ता और कर्म भिन्न, निश्चय से अभिन्न
387-396) इस निश्चय-व्यवहार कथन का दृष्टांत
397-400) निश्चय-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-आलोचना ही अभेद-नय से निश्चय-चारित्र
401-410) इन्द्रियों और मन के विषयों में रमणता -- मिथ्याज्ञान
411-413) अज्ञान-चेतना बंध का कारण
414-428) अब इसी अर्थ की गाथा कहते हैं --
429-431) ज्ञान आहारक क्यों नहीं?
432-435) द्रव्य-लिंग भी निश्चय से मुक्ति का कारण नहीं
436) आत्म-रमणता की प्रेरणा
437) भाव-लिंग के बिना द्रव्य-लिंग द्वारा समयसार का ग्रहण नहीं
438) परमार्थ से लिंग मोक्षमार्ग नहीं
439) ग्रन्थ समाप्ति और इसके पढ़ने का फल

परिशिष्ट

440-parishisht) परिशिष्ट

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!

श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव-प्रणीत

श्री

समयसार

मूल प्राकृत गाथा, श्री अमृतचंद्राचार्य विरचित 'समय-व्याख्या' नामक संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद, श्री जयसेनाचार्य विरचित 'तात्पर्य-वृत्ति' नामक संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद सहित

आभार : पं जयचंदजी छाबडा, आ. ज्ञानसागर, क्षु. मनोहर वर्णी, पं हुकमचंद भारिल्ल, आ. ज्ञानमती, प्रो. पारसमल अग्रवाल, विजय कुमार जैन

!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥

अर्थ : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिरानेवाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-समयसार नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तार: श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तार: श्री-गणधर-देवा: प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री-कुन्द-कुन्दाचार्य-देव विरचितं ॥

(समस्त पापों का नाश करनेवाला, कल्याणों का बढ़ानेवाला, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला, भव्यजीवों के मन को प्रतिबुद्ध-सचेत करनेवाला यह शास्त्र समयसार नाम का है, मूल-ग्रन्थ के रचयिता सर्वज्ञ-देव हैं, उनके बाद ग्रन्थ को गूंथनेवाले गणधर-देव हैं, प्रति-गणधर देव हैं उनके वचनों के अनुसार लेकर आचार्य श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित यह ग्रन्थ है । सभी श्रोता पूर्ण सावधानी पूर्वक सुनें ।)

॥ श्रोतार: सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

(देव वंदना)

सुध्यान में लवलीन हो जब, घातिया चारों हने ।
सर्वज्ञ बोध विरागता को, पा लिया तब आपने ॥
उपदेश दे हितकर अनेकों, भव्य निज सम कर लिये ।
रविज्ञान किरण प्रकाश डालो, वीर! मेरे भी हिये ॥

(शास्त्र वंदना)

स्याद्वाद, नय, षट् द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रमाण का ।
जड़कर्म चेतन बंध का, अरु कर्म के अवसान का ॥
कहकर स्वरूप यथार्थ जग का, जो किया उपकार है ।
उसके लिये जिनवाणी माँ को, वंदना शत बार है ॥
(गुरु वंदना)
नि:संग हैं जो वायुसम, निर्लेप हैं आकाश से ।
निज आत्म में ही विहरते, जीवन न पर की आस से ॥
जिनके निकट सिंहादि पशु भी, भूल जाते क्रूरता ।
उन दिव्य गुरुओं की अहो! कैसी अलौकिक शूरता ॥

सिद्धों को नमस्कार

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते ।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं ॥1॥
ध्रुव अचल अनुपम सिद्ध की कर वंदना मैं स्व-पर हित
यह समयप्राभृत कह रहा श्रुतकेवली द्वारा कथित ॥१॥
अन्वयार्थ : [धुवमचलमणोवमं] ध्रुव, अचल और अनुपम [गदिं] गति को [पत्ते] प्राप्त हुए [सव्वसिद्धे] सर्व सिद्धों को [वंदित्तु] नमस्कार करके [इणं ओ] अहो भव्यों ! [सुदकेवलीभणिदं] श्रुतकेवलियों के द्वारा कथित यह [समयपाहुडम्] समयसार नामक प्राभृत / शास्त्र [वोच्छामि] कहूँगा ।

स्वसमय और परसमय का लक्षण

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण ।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥2॥
सद्ज्ञानदर्शनचरित परिणत जीव ही हैं स्वसमय
जो कर्मपुद्गल के प्रदेशों में रहें वे परसमय ॥२॥
अन्वयार्थ : [जीवो] जो जीव [चरित्तदंसणणाणट्ठिदो] दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित हो रहा है [तं] उसे [हि] निश्चय से [ससमयं] स्वसमय [जाण] जानो [च] और जो जीव [पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं] पुदगल कर्म के प्रदेशों में स्थित है [तं] उसे [परसमयं] परसमय [जाण] जानो ।

'समय' की सुन्दरता

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए ।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥3॥
एकत्वनिश्चयगत समय सर्वत्र सुन्दर लोक में
विसंवाद है पर बंध की यह कथा ही एकत्व में ॥३॥
अन्वयार्थ : [एयत्तणिच्छयगदो] एकत्व निश्चय को प्राप्त जो [समओ] समय है वह [लोए] लोक में [सव्वत्थ] सर्वत्र / सब जगह [सुन्दरो] सुन्दर है [तेण] इसलिए [एयत्ते] एकत्व में दूसरे के साथ [बंधकहा] बंध की कथा [विसंवादिणी] विसंवाद / विरोध करनेवाली [होदि] होती है ।

एकत्व की दुर्लभता

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा ।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥4॥

सबकी सुनी अनुभूत परिचित भोग बंधन की कथा
पर से पृथक् एकत्व की उपलब्धि केवल सुलभ ना ॥४॥

अन्वयार्थ : [सव्वस्सवि] सर्व लोक को [कामभोगबंधकहा] कामभोग संबंधी बंध की कथा तो [सुद] सुनने में आ गई है, [परिचिद] परिचय में आ गई है और [अणुभूदा] अनुभव में भी आ गई है किन्तु [विहत्तस्स] रागादि रहित आत्मा के [एयत्तस्स] एकत्व को [उवलंभो] उपयोग में लाना [णवरि] एकमात्र वही [ण सुलहो] सुलभ नहीं है ।

आचार्य की प्रतिज्ञा

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण ।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं ॥5॥
निज विभव से एकत्व ही दिखला रहा करना मनन
पर नहीं करना छल ग्रहण यदि हो कहीं कुछ स्खलन ॥५॥

अन्वयार्थ : [तं] उस [एयत्तविहत्तं] एकत्व-विभक्त आत्मा को [अप्पणो] आत्मा के [सविहवेण] निज बुद्धि-वैभव से [दाएहं] मैं दिखाता हूँ [जदि] यदि मैं [दाएज्ज] दिखाऊँ तो [पमाणं] प्रमाण (स्वीकार) करना, [चुक्केज्ज] और यदि कहीं चूक जाऊँ तो [छलं] छल [ण] नहीं [घेत्तव्वं] ग्रहण करना ।

शुद्धात्मा का स्वरूप

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो ।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सोउ सो चेव ॥6॥
न अप्रमत्त है न प्रमत्त है बस एक ज्ञायकभाव है
इस भाँति कहते शुद्ध पर जो ज्ञात वह तो वही है ॥६॥

अन्वयार्थ : [जाणगो दु जो भावो] जो ज्ञायक भाव [अप्पमत्ते] अप्रमत्त [ण वि होदि] भी नहीं और [ण पमत्ते] प्रमत्त भी नहीं है, [एवं] इस प्रकार उसे [सुद्धं] शुद्ध [भणंति] कहते हैं [च] और [जो] जिसे [णाओ] ज्ञायक भाव द्वारा जान लिया है [सोउ सो चेव] वह वही है, और कोई नहीं ।

ज्ञानी आत्मा शुद्ध ज्ञायक है

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्तं दंसणं णाणं ।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥7॥
दृग ज्ञान चारित जीव के हैं - यह कहा व्यवहार से
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक शुद्ध है परमार्थ से ॥७॥

अन्वयार्थ : [णाणिस्स] ज्ञानी (आत्मा) के [चरित्त दंसणं णाणं] चारित्र, दर्शन और ज्ञान - ये तीन भाव [ववहारेण] व्यवहार से [उवदिस्सदि] कहे जाते हैं; निश्चय से [णाणंवि] ज्ञान भी [ण] नहीं है, [दंसणं] दर्शन भी नहीं है और [चरित्तं] चारित्र भी नहीं है; ज्ञानी (आत्मा) तो एक [सुद्धो] रागादि रहित [जाणगो] ज्ञायक ही है ।

व्यवहार की आवश्यकता

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं ।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥8॥
अनार्य भाषा के बिना समझा सके न अनार्य को
बस त्योंहि समझा सके ना व्यवहार बिन परमार्थ को ॥८॥

अन्वयार्थ : [जह] जिसप्रकार [अणज्जभासं] अनार्य (म्लेच्छ) भाषा के [विणा] बिना [अणज्जो] अनार्य (म्लेच्छ) जन को कुछ [वि] भी

[गाहेदुं] समझाना [सक्कम्] संभव [ण] नहीं है; [तह] उसीप्रकार [ववहारेण] व्यवहार के [विणा] बिना [परमत्थ] परमार्थ (निश्चय) का [उवदेसणम्म] कथन [असक्कं] अशक्य है ।

श्रुतकेवली

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा ॥9॥
जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा ।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा ॥10॥
श्रुतज्ञान से जो जानते हैं शुद्ध केवल आतमा
श्रुतकेवली उनको कहें ऋषिगण प्रकाशक लोक के ॥९॥
जो सर्वश्रुत को जानते उनको कहें श्रुतकेवली
सब ज्ञान ही है आतमा बस इसलिए श्रुतकेवली ॥१०॥

अन्वयार्थ : [जो] जो जीव [हि] निश्चय से केवल [शुद्धम्] राग द्वेष रहित [अप्पमिणंतु] इस अनुभव गोचर आत्मा को [सुएण] श्रुतज्ञान के [हिगच्छइ] सम्मुख होता हुआ जानते हैं, [तं] उसे [लोएप्पईवयरा] लोक के प्रकाशक [मसिणो] ऋषिगण [सुकेवलिम्] (निश्चय) श्रुतकेवली [भणन्ति] कहते हैं और [यो] जो [सुयणाणं] सर्वश्रुतज्ञान को [जाणइ] जानते हैं, [तमजिणा] उन्हें जिनदेव [सुयकेवलिं] (व्यवहार) श्रुतकेवली [आहू] कहते हैं; [जम्हा] क्योंकि [सव्वं] सब [णाणं] ज्ञान [अप्पा] आत्मा ही है [तम्हा] इसलिए वह [सुदकेवली] श्रुत-केवली है ।

आत्म-भावना की प्रेरणा

णाणम्हि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य ।
ते पूण तिण्णिवि आदा तम्हा कुण भावणं आदे ॥11॥

अन्वयार्थ : [णाणम्हि] ज्ञान में, [दंसणे] दर्शन में [य] और [चरित्ते] चारित्र में [खलु] अवश्य [भावणा] भावना [कादव्वा] करनी चाहिए [ते पूण] क्योंकि ये [तिण्णिवि] तीनों [आदा] आत्मा के स्वरूप हैं । [तम्हा] इसलिए [आदे] आत्मा की [भावणं] भावना बार-बार [कुण] करनी चाहिए ।

आत्म-भावना से शीघ्र मुक्ति

जो आदभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि ।
सो सव्य-दुक्ख-मोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥12॥

अन्वयार्थ : जो मुनि या तपोधन तत्परता के साथ इस आत्मभावना को स्वीकार करता है वह सम्पूर्ण दु:खों से थोडे ही काल में मुक्त हो जाता है ।

निश्चयनय भूतार्थ है और व्यवहार नय अभूतार्थ है

ववहारोभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ । (11)
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥13॥
शुद्धनय भूतार्थ है अभूतार्थ है व्यवहारनय
भूतार्थ की ही शरण गह यह आतमा सम्यक् लहे

अन्वयार्थ : [ववहारो] 'व्यवहार-नय [अभूदत्थो] अभूतार्थ है, [सुद्धणओ] शुद्ध-नय [भूदत्थो] भूतार्थ है' - [देसिदो दु] ऐसा दिखलाया है । [भूदत्थमस्सिदो] भूतार्थ के आश्रित, [जीवो] जीव [खलु] निश्चय से [सम्मादिट्ठी] सम्यग्दृष्टि [हवदि] होता है ।

व्यवहार नय भी प्रयोजनवान है

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं । (12)

ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥14॥

परमभाव को जो प्राप्त हैं वे शुद्धनय ज्ञातव्य हैं

जो रहें अपरमभाव में व्यवहार से उपदिष्ट हैं

अन्वयार्थ : [सुद्धो] शुद्धनय [सुद्धादेसो] शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है वह [परमभावदरिसीहिं] शुद्धात्मा को देखने वाले आत्मदर्शी द्वारा [णायव्वो] जानने-भावने योग्य है [पुण] और [जे] जो जीव [अपरमेभावे] अपरमभाव में [ट्ठिदा] स्थित हैं, वे [ववहारदेसिदा] व्यवहारनय द्वारा उपदेश करने योग्य हैं ।

शुद्धनय से जानना सम्यक्त्व है

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च । (13)

आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥15॥

चिदचिदास्रव पाप-पुण्य शिव बंध संवर निर्जरा

तत्त्वार्थ ये भूतार्थ से जाने हुए सम्यक्त्व हैं ॥१३॥

अन्वयार्थ : [भूदत्थेण] भूतार्थ / शुद्ध-नय से [अभिगदा] जाने हुए [जीवाजीवा] जीव, अजीव [य] व [पुण्णपावं] पुण्य, पाप, [च] और [आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य] आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष - ये नवतत्त्व ही [सम्मत्तं] सम्यग्दर्शन हैं ।

शुद्धनय का लक्षण

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं । (14)

अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥16॥

अबद्धपुट्ठ अनन्य नियत अविशेष जाने आत्म को

संयोग विरहित भी कहे जो शुद्धनय उसको कहें ॥१४॥

अन्वयार्थ : जो [अप्पाणं] आत्मा को [अबद्धपुट्ठं] बंध रहित, पर के स्पर्श रहित, [अणण्णयं] अनन्य, [णियदं] नित्य, [अविसेसम्] अविशेष और [असंजुत्तं] अन्य के संयोग रहित [पस्सदि] अवलोकन करता है, [तं] उसे [सुद्धणयं] शुद्ध-नय [वियाणीहि] जानो ।

जो आत्मा को देखता है वही जिनशासन को जानता है

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं । (15)

अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥17॥

अबद्धपुट्ठ अनन्य अरु अविशेष जाने आत्म को

द्रव्य एवं भावश्रुतमय सकल जिनशासन लहे ॥१५॥

अन्वयार्थ : जो [अप्पाणं] आत्मा को [अबद्धपुट्ठं] अबद्धस्पृष्ट, [अणण्णमविसेसं] अनन्य, अविशेष [पस्सदि] देखता है; वह [अपदेससुत्तमज्झं] द्रव्यश्रुत और भाव-श्रुत के मध्य होता हुआ [सव्वं] सम्पूर्ण [जिणसासणं] जिनशासन को [पस्सदि] देखता है ।

ध्यान में केवल आत्मा

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।

आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥18॥

निज ज्ञान में है आतमा दर्शन चरित में आतमा

अर योग संवर और प्रत्याख्यान में भी आतमा ॥१८॥

अन्वयार्थ : [खु] निश्चय से [मज्झ] मेरे [णाणे] ज्ञान में [आदा] आत्मा ही है । मेरे [दंसणे] दर्शन में, [चरित्ते] चारित्र में [य] और [पच्चक्खाणे] प्रत्याख्यान में भी आत्मा ही है । इसीप्रकार [संवरे] संवर और [जोगे] योग / निर्विकल्प समाधि में भी आत्मा ही है ।

रत्नत्रय ही आत्मा है

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं । (16)
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥19॥
चारित्र दर्शन ज्ञान को सब साधुजन सेवें सदा
ये तीन ही हैं आतमा बस कहे निश्चयनय सदा ॥१६॥

अन्वयार्थ : [साहुणा] साधुपुरुष को [दंसणणाणचरित्तणि] दर्शन-ज्ञान-चारित्र का [णिच्चं] सदा [सेविदव्वाणि] सेवन करना चाहिए [ताणि पुण] और उन [तिण्णि] तीनों को [णिच्छयदो] निश्चय से एक [अप्पाणं] आत्मा [वि] ही [जाण] जानो ।

रत्नत्रय के सेवन का क्रम

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि । (17)
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥20॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो । (18)
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥21॥
'यह नृपति है' - यह जानकर **अर्थ**ार्थिजन श्रद्धा करें
अनुचरण उसका ही करें अति प्रीति से सेवा करें ॥१७॥
यदि मोक्ष की है कामना तो जीवनृप को जानिए
अति प्रीति से अनुचरण करिए प्रीति से पहिचानिए ॥१८॥

अन्वयार्थ : [जह] जिसप्रकार [को वि] कोई [अत्थत्थीओ] धन का अर्थी [पुरिसो] पुरुष [रायाणं] राजा को [जाणिऊण] जानकर उसकी [सद्दहदि] श्रद्धा करता है और [पुणो] फिर [तं] उसका [पयत्तेण] प्रयत्नपूर्वक / लगन से [अणुचरदि] अनुचरण / सेवा करता है; [तह य] उसीप्रकार [मोक्खकामेण] मोक्ष के इच्छुक पुरुषों को [जीवराया] जीवरूपी राजा को [णादव्वो] जानना चाहिए और फिर उसका [सद्दहेदव्वो] श्रद्धान करना चाहिए, [य पुणो] उसके बाद [सो चेव] उसी का [अणुचरिदव्वो] अनुचरण करना चाहिए ।

आत्मा कब तक अज्ञानी रहता है?

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं । (19)
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥22॥
मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ या हैं हमारे ये सभी
यह मान्यता जबतक रहे अज्ञानि हैं तबतक सभी ॥१९॥

अन्वयार्थ : [कम्मे] ज्ञानावरणी आदि द्रव्यकर्मों, मोह-राग-द्वेषादि भावकर्मों में [अहमिदि] अहंबुद्धि [य] एवं [णोकम्मम्हि] शरीरादि नोकर्मों में [अहकं च कम्म णोकम्मं] ममत्वबुद्धि; यह मानना कि 'ये सभी मैं हूँ और मुझमें ये सभी कर्म-नोकर्म हैं' - [जा एसा खलु बुद्धी] जबतक ऐसी बुद्धि बनाए रखता है [ताव] तबतक [अप्पडिबुद्धो] अप्रतिबुद्ध [हवदि] रहता है, अज्ञानी रहता है ।

आत्मा के बंध मोक्ष का कारण

जीवेव अजीवे वा संपदि समयम्हि जत्थ उवजुत्तो ।
तत्थेव बंधमोक्खो हवदि समासेण णिद्दिट्ठो ॥23॥

अन्वयार्थ : [जीवेव] जीव तथा [अजीवे वा] अजीव-देहादिक में [संपदि समयम्हि] जिस समय यह आत्मा [जत्थ उवजुत्तो] जहाँ उपयुक्त रहता है [तत्थेव] तभी [बंधमोक्खो] मोक्ष तथा बंध [हवदि] होता है, ऐसा [समासेण णिद्दिट्ठो] संक्षेप से कथन किया है ।

निश्चय और व्यवहार से जीव का कर्तापना

जं कुणदि भावामादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
णिच्छयदो ववहारा पोग्गलकम्माण कत्तारं ॥24॥

अन्वयार्थ : [णिच्छयदो] निश्चयनय से [जं] जिस [भावामादा] भाव को आत्मा [कुणदि] करता है [तस्स] उस [भावस्स] भाव का [सो] वह [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है और [ववहारा] व्यवहारनय से [पोग्गलकम्माण] पुद्गल-कर्मों का [कत्तारं] कर्ता होता है ।

अप्रतिबुद्ध - पर पदार्थ में अहंकार / ममकार

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सम्हि अत्थि मम एदं । (20)
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा ॥25॥
आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि । (21)
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि ॥26॥
एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो । (22)
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥27॥
सचित्त और अचित्त एवं मिश्र सब परद्रव्य ये
हैं मेरे ये मैं इनका हूँ ये मैं हूँ या मैं हूँ वे ही ॥२०॥
हम थे सभी के या हमारे थे सभी गतकाल में
हम होंयगे उनके हमारे वे अनागत काल में ॥२१॥
ऐसी असम्भव कल्पनाएँ मूढ़जन नित ही करें
भूतार्थ जाननहार जन ऐसे विकल्प नहीं करें ॥२२॥

अन्वयार्थ : जो पुरुष [अण्णं जं परदव्वं] अपने से भिन्न परद्रव्यों में - [सच्चित्तचित्तमिस्सं वा] सचित्त स्त्री-पुत्रादिक में, अचित्त धन-धान्यादिक में, मिश्र ग्राम-नगरादिक में ऐसा विकल्प करता है कि [अहमेदं] मैं ये हूँ, [एदमहं] ये सब द्रव्य मैं हूँ; [अहमेदस्सेव होमि मम एदं] मैं इनका हूँ, ये मेरे हैं; [आसि मम पुव्वमेदं] ये मेरे पहले थे, [अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि] इनका मैं पहले था; तथा [होहिदि पुणोवि मज्झं] ये सब भविष्य में मेरे होंगे, [अहमेदं चावि होस्सामि] मैं भी भविष्य में इनका होऊँगा - [एवं तु] इसप्रकार [असंभूदं] मिथ्या-रूप [आदवियप्पं] विचारों को जो आत्मा [करेदि] करता है वह [संमूढो] मूढ़ है, अज्ञानी है; किन्तु जो पुरुष वस्तु का [भूदत्थं] वास्तविक स्वरूप [जाणंतो] जानता हुआ [ण करेदि दुतं] ऐसे झूठे विकल्प नहीं करता है, वह [असंमूढो] ज्ञानी है ।

पर पदार्थ को जीव का कहना ठीक नहीं - तर्क

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं । (23)
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥28॥
सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं । (24)
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥29॥
जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं । (25)
तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं ॥30॥
अज्ञान-मोहित-मती बहुविध भाव से संयुक्त जिय
अबद्ध एवं बद्ध पुद्गल द्रव्य को अपना कहे ॥२३॥
सर्वज्ञ ने देखा सदा उपयोग लक्षण जीव यह
पुद्गलमयी हो किसतरह किसतरह तू अपना कहे ? ॥२४॥
जीवमय पुद्गल तथा पुद्गलमयी हो जीव जब

'ये मेरे पुद्गल द्रव्य हैं'- यह कहा जा सकता है तब ॥२५॥

अन्वयार्थ : [अण्णाण] अज्ञान से [मोहिद] मोहित [मदी] बुद्धि वाला [जीवो] जीव [बद्धम्] बद्ध (शरीरादि) [च] और [अबद्धं] अबद्ध (धन-धान्यादि) [पुग्गलंदव्वं] पुद्गल द्रव्य को [मज्झमिणं] अपना [भणदि] कहता है [तहा] तथा [बहुभावसंजुत्तो] बहु भावों से युक्त हो रहा है । [सव्वण्हुणाण] सर्वज्ञ के ज्ञान में [दिट्ठो] देखा गया है कि यह [जीवो] जीव-द्रव्य [णिच्चं] नित्य / सदैव [उवओग] उपयोग [लक्खणो] लक्षण वाला है, [सो] यह [पुग्गलदव्वो] पुद्गल-द्रव्य [भूदो] रूप [कह] कैसे हो सकता है, [जंभणसि] जिससे कहता है कि [मज्झमिणं] ये मेरे हैं । [जदि] यदि [सो] वह (जीव) [पुग्गलदव्वो] पुद्गल-द्रव्य रूप [भूदो] हो जाये और [इदरं] अन्य (पुद्गल) [जीवत्तमागदं] जीवत्व को प्राप्त करे तब [वुत्तुं] कहना [सत्तो] शक्य होगा कि [जे] यह [पुग्गलदव्वं] पुद्गल द्रव्य [मज्झमिणं] मेरा है ।

प्रश्न - आत्मा-शरीर एक नहीं तो शरीराश्रित स्तुति कैसे ?

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव । (26)
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ॥31॥
यदि देह ना हो जीव तो तीर्थंकरों का स्तवन
सब असत् होगा इसलिए बस देह ही है आतमा ॥२६॥

अन्वयार्थ : [जदि] यदि [जीवो] जीव [सरीरं] शरीर [ण] नहीं है तो [तित्थ] तीर्थंकर [चेव] और [आयरायरिय] आचार्यों की [संथुदी] स्तुति [चेव] वगैरह [सव्वावि] सब [मिच्छा] मिथ्या / व्यर्थ ठहरती [हवदि] है, [तेण] अत: [आदा] आत्मा [देहो] शरीर [हवदि] ही है ।

व्यवहार से जीव और शरीर एक, निश्चय से नहीं

ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलुएक्को । (27)
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो ॥32॥
'देह-चेतन एक हैं' - यह वचन है व्यवहार का
'ये एक हो सकते नहीं' - यह कथन है परमार्थ का ॥२७॥

अन्वयार्थ : [ववहारणओ] व्यवहार-नय [भासदि] कहता है कि [जीवो देहो य] जीव और शरीर [खलुएक्को] एक ही [हवदि] हैं; [दु] किन्तु [णिच्छयस्स] निश्चय-नय से [जीवो देहो य] जीव और शरीर [कदा वि] कभी भी [एक्कट्ठो] एक पदार्थ [ण] नहीं हैं ।

व्यवहार स्तुति निश्चय स्तुति नहीं

इणमण्णं जीवादो देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणी । (28)
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥33॥
तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो । (29)
केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥34॥
इस आतमा से भिन्न पुद्गल रचित तन का स्तवन
कर मानना कि हो गया है केवली का स्तवन ॥२८॥
परमार्थ से सत्यार्थ ना वह केवली का स्तवन
केवलि-गुणों का स्तवन ही केवली का स्तवन ॥२९॥

अन्वयार्थ : [जीवादो] जीव से [अण्णं] भिन्न [इणम्] इस [देहं पोग्गलमयं] पुद्गलमय देह की [थुणित्तु] स्तुति करके [मुणी] साधु ऐसा [मण्णदि हु] मानते हैं कि [मए] मैंने [केवली भयवं] केवली भगवान की [संथुदो] स्तुति की और [वंदिदो] वन्दना की । [तं] वह स्तवन [णिच्छये] निश्चयनय से [ण जुज्जदि] योग्य नहीं है; [हि] क्योंकि [सरीरगुणा] शरीर के गुण [केवलिणो] केवली के [ण] नहीं [होंति] होते । जो [केवलिगुणो] केवली के गुणों की [थुणदि] स्तुति करता है, [सो] वह [तच्चं] परमार्थ से [केवलिं] केवली की [थुणदि] स्तुति करता है ।

दृष्टांत - नगर का वर्णन राजा का वर्णन नहीं

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि । (30)
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥35॥
वर्णन नहीं है नगरपति का नगर-वर्णन जिसतरह
केवली-वन्दन नहीं है देह-वन्दन उसतरह ॥३०॥

अन्वयार्थ : [जह] जैसे [णयरम्मि] नगर का [वण्णिदे वि] वर्णन करने पर भी [रण्णो] राजा का [वण्णणा] वर्णन [ण कदा होदि] कभी नहीं होता, [देहगुणे] शरीर के गुणों का [थुव्वंते] स्तवन करने पर [केवलिगुणा] केवली के गुणों का [थुदा] स्तवन [ण] नहीं [होंति] होता ।

निश्चय स्तुति - जितेन्द्रिय

जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं । (31)
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥36॥
कर इन्द्रियजय ज्ञानस्वभाव रु अधिक जाने आत्म को,
निश्चयविषैं स्थित साधुजन भाषैं जितेन्द्रिय उन्हीं को ॥३१॥

अन्वयार्थ : जो [इन्दिये] इन्द्रियों को [जिणित्ता] जीतकर [आदं] आत्मा को [णाणसहावाधियं] ज्ञान-स्वभाव द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक (भिन्न) [मुणदि] जानते हैं; [तं] वे [खलु] वस्तुत: [जिदिंदियं] जितेन्द्रिय हैं - ऐसा [णिच्छिदा] निश्चयनय में स्थित [साहू] साधुजन [भणंति] कहते हैं ।

निश्चय स्तुति - जितमोह

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं । (32)
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया बेंति ॥37॥
कर मोहजय ज्ञानस्वभाव रु अधिक जाने आतमा,
परमार्थ-विज्ञायक पुरुष ने उन हि जितमोही कहा ॥३२॥

अन्वयार्थ : जो [मोहं तु] मोह को [जिणित्ता] जीतकर [आदं] आत्मा को [णाणसहावाधियं] ज्ञानस्वभाव के द्वारा (अन्य द्रव्यभावों से) अधिक [मुणदि] जानता है [तं] उस [साहुं] साधु को, [परमट्ठवियाणया] परमार्थ के जाननेवाले, [जिदमोहं] जितमोह [बेंति] कहते हैं ।

निश्चय स्तुति - क्षीणमोह

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स । (33)
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥38॥
जितमोह साधु पुरुष का जब मोह क्षय हो जाय है,
परमार्थविज्ञायक पुरुष क्षीणमोह तब उनको कहे ॥३३॥

अन्वयार्थ : [जिदमोहस्स] जिसने मोह को [जइया] जीत लिया है, ऐसे [साहुस्स] साधु के जब [मोहो] मोह [खीणो] क्षीण [हविज्ज] हो जाए, [तइया हु] तब [सो] उस साधु को [णिच्छयविदूहिं] निश्चयनय के जानकार [खीणमोहो] क्षीणमोह [भण्णदि] कहते हैं ।

प्रतिबुद्ध द्वारा परभावों का त्याग - प्रत्याख्यान

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं । (34)
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥39॥
जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि । (35)
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुञ्चदे णाणी ॥40॥

परभाव को पर जानकर परित्याग उनका जब करे
तब त्याग हो बस इसलिए ही ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥३४॥
जिसतरह कोई पुरुष पर जानकर पर परित्यजे
बस उसतरह पर जानकर परभाव ज्ञानी परित्यजे ॥३५॥
अन्वयार्थ : [जम्हा] जिसकारण यह आत्मा अपने आत्मा से भिन्न [सव्वे भावे] समस्त भावों को [परेत्ति] 'वे पर हैं' - ऐसा [णादूणं] जानकर [पच्चक्खाई] प्रत्याख्यान / त्याग करता है, [तम्हा] उसी कारण [पच्चक्खाणं] प्रत्याख्यान [णाणं] ज्ञान ही है -- ऐसा [णियमा] नियम से [मुणेदव्वं] जानना चाहिए । [जह] जिसप्रकार लोक में [कोवि पुरिसो] कोई पुरुष [परदव्वमिणंति] परवस्तु को 'यह परवस्तु है' - ऐसा [जाणिदुं] जानकर परवस्तु का [चयदि] त्याग करता है [तह] उसीप्रकार [णाणी] ज्ञानी पुरुष [सव्वे परभावे] समस्त पर-भावों को [णाऊण] जानकर [विमुञ्चदे] छोड़ देते हैं ।

मोह से निर्मम

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को । (36)
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति ॥41॥
मोहादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय
है मोह-निर्ममता यही वे कहें जो जानें समय ॥३६॥
अन्वयार्थ : '[मोहो] मोह [मम] मेरा [को वि] कुछ भी [णत्थि] नहीं है, [अहमेक्को] मैं तो एक [उवओग] उपयोगमय [एव] ही हूँ' - [तं] ऐसा [बुज्झदि] जानने को [समयस्स वियाणया] सिद्धांत अथवा स्व-पर के जानने वाले [मोहणिम्ममत्तं] मोह से निर्मम [बेंति] कहते हैं ।

धर्मादि ज्ञेय पदार्थ से निर्मम

णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को । (37)
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति ॥42॥
धर्मादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय
है धर्म-निर्ममता यही वे कहें जो जानें समय ॥३७॥
अन्वयार्थ : [बुज्झदि] यह जाने की [धम्म आदी] धर्म आदि द्रव्य [णत्थि मम] मेरे कुछ भी नहीं लगते, [उवओग एव] उपयोग ही [अहमेक्को] एक मैं हूँ -- [तं] ऐसा जानने को [समयस्स वियाणया] सिद्धांत अथवा स्व-पर के जानने वाले [धम्मणिम्ममत्तं] धर्म-द्रव्य के प्रति निर्ममत्व [बेंति] कहते हैं ।

मैं एक शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सदारूवी । (38)
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि ॥43॥
मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ॥३८॥
अन्वयार्थ : [अहमेक्को] मैं एक हूँ, [खलु] स्पष्ट रूप से [सुद्धो] शुद्ध [दंसणणाणमइयो] दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणत [सदारूवी] सदा अरूपी हूँ और [अण्णं] अन्य [परमाणुमेत्तंपि] परमाणुमात्र द्रव्य [किंचिवि] किंचित्मात्र भी [मज्झ] मेरे [ण अत्थि] नहीं हैं ।

जीव-अजीव में एकता - मिथ्या-मत

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई । (39)
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूवेंति ॥44॥
अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं । (40)

मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवोत्ति ॥45॥
कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति । (41)
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥46॥
जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केइ जीवमिच्छंति । (42)
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति ॥47॥
एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा । (43)
ते ण परमट्ठवादी णिच्छयवादीहिं णिद्दिट्ठा ॥48॥
को मूढ़, आत्म-अजान जो, पर-आत्मवादी जीव है,
'है कर्म, अध्यवसान ही जीव' यों हि वो कथनी करे ॥३९॥
अरु कोई अध्यवसान में अनुभाग तीक्षण-मन्द जो,
उसको ही माने आतमा, अरु अन्य को नोकर्म को ! ॥४०॥
को अन्य माने आतमा बस कर्म के ही उदय को,
को तीव्रमन्द गुणों सहित कर्मों हि के अनुभाग को ! ॥४१॥
को कर्म-आत्मा उभय मिलकर जीव की आशा धरे,
को कर्म के संयोग से अभिलाष आत्मा की करें ॥४२॥
दुर्बुद्धि यों ही और बहुविध, आतमा पर को कहै ।
वे सर्व नहिं परमार्थवादी ये हि निश्चयविद् कहै ॥४३॥

अन्वयार्थ : [अप्पाणमयाणंता] आत्मा को न जानते हुए [परप्पवादिणो] पर को आत्मा कहने वाले [केई मूढा दु] कोई मूढ़, मोही, अज्ञानी तो [अज्झवसाणं] अध्यवसान को [च तहा] और कोई [कम्मं] कर्म को [जीवं परूवेंति] जीव कहते हैं । [अवरे] अन्य कोई [अज्झवसाणेसु] अध्यवसानों में [तिव्वमंदाणुभागगं] तीव्रमंद अनुभागगत को [जीवं मण्णंति] जीव मानते हैं [तहा] और [अवरे] दूसरे कोई [णोकम्मं चावि] नोकर्म को [जीवोत्ति] जीव मानते हैं [अवरे] अन्य कोई [कम्मस्सुदयं] कर्म के उदय को [जीवम्] जीव मानते हैं, कोई जो [तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं] तीव्र-मन्दता-रूप गुणों से भेद को प्राप्त होता है [सो] वह [हवदि जीवो] जीव है' इसप्रकार [कम्माणुभागम्] कर्म के अनुभाग को [इच्छन्ति] जीव इच्छते हैं (मानते हैं) [केइ] कोई [जीवो कम्मं उहयं] जीव और कर्म [दोण्णि वि खलु] दोनों मिले हुओं को ही [जीवम् इच्छन्ति] जीव मानते है [दु] और [अवरे] अन्य कोई [कम्माणं संजोगेण] कर्म के संयोग से ही [जीवम् इच्छन्ति] जीव मानते हैं । [एवंविहा] इस प्रकार के तथा [बहुविहा] अन्य भी अनेक प्रकार के [दुम्मेहा] दुर्बुद्धि-मिथ्यादृष्टि जीव [परमप्पाणं] पर को आत्मा [वदन्ति] कहते हैं । [ते] उन्हें [णिच्छयवादीहिं] निश्चयवादियों ने (सत्यार्थवादियों ने) [परमट्ठवादी] परमार्थवादी [सत्यार्थवक्ता ण णिट्ठिा] नहीं कहा है ।

जीव-अजीव में भिन्नता - मिथ्या-मत खण्डन

एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा । (44)
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चंति ॥49॥
पुद्गलदरव परिणाम से, उपजे हुए सब भाव ये
सब केवलीजिन भाषिया, किस रीत जीव कहो उन्हें ॥४४॥

अन्वयार्थ : [एदे] यह पूर्वकथित अध्यवसान आदि [सव्वे भावा] भाव हैं वे सभी [पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा] पुद्गलद्रव्य के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं इसप्रकार [केवलिजिणेहिं] केवली सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव ने [भणिया] कहा है [ते] उन्हें [जीवोत्ति] जीव ऐसा [कह वुच्चंति] कैसा कहा जा सकता है ?

आठों कर्मों का फल -- अध्यवसान

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिणा बेंति । (45)
जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स ॥50॥
रे ! कर्म अष्ट प्रकार का, जिन सर्व पुद्गलमय कहे ।
परिपाकमें जिस कर्मका फल दु:ख नाम प्रसिद्ध है ॥४५॥

अन्वयार्थ : [अट्ठविहं पि य] आठों प्रकार का [कम्मं] कर्म [सव्वं] सब [पोग्गलमयं] पुद्गलमय है ऐसा [जिणा] जिनेन्द्रभगवान सर्वज्ञदेव [बेंति] कहते हैं - [जस्स विपच्चमाणस्स] जो पक्व होकर उदय में आनेवाले कर्म का [फलं] फल [तं] प्रसिद्ध [दुक्खं] दु:ख है [ति वुच्चदि] ऐसा कहा है ।

अध्यवसान-भाव जीव है - व्यवहार

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं । (46)
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ॥51॥
व्यवहार ये दिखला दिया, जिनदेव के उपदेश में
ये सर्व अध्यवसान आदिक, भाव को जँह जिव कहे ॥४६॥

अन्वयार्थ : [एदे सव्वे] यह सब [अज्झवसाणादओ भावा] अध्यवसानादि भाव [जीवा] जीव हैं इसप्रकार [जिणवरेहिं] जिनेन्द्र-देव ने [उवएसो] जो उपदेश दिया है सो [ववहारस्स दरीसणमु] व्यवहारनय [वण्णिदो] दिखाया है ।

इस व्यवहार को दृष्टांत द्वारा समझाते हैं

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो । (47)
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया ॥52॥
एमेव य ववहारो अज्झवसाणादिअण्णभावाणं । (48)
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो ॥53॥
'निर्गमन इस नृपका हुआ', निर्देश सैन्य-समूह में
व्यवहार से कहलाय यह, पर भूप इसमें एक है ॥४७॥
त्यों सर्व अध्यवसान आदिक, अन्यभाव जु जीव हैं ।
शास्त्रन किया व्यवहार, पर वहाँ जीव निश्चय एक ॥४८॥

अन्वयार्थ : जैसे कोई राजा सेनासहित निकला वहाँ [राया हु णिग्गदो] यह राजा निकला [त्ति य एसो] इसप्रकार जो यह [बलसमुदयस्स] सेना के समुदाय को [आदेसो] कहा जाता है सो वह [ववहारेण दु उच्चदि] व्यवहार से कहा जाता है, [तत्] उस सेना में [एक्को णिग्गदो राया] राजा तो एक ही निकला है; [एमेव य] इसीप्रकार [अज्झवसाणादिअण्णभावाणं] अध्यवसानादि अन्य भावों को [जीवो त्ति] '(यह) जीव है' इसप्रकार [सुत्ते] परमागम में कहा है सो [ववहारो कदो] व्यवहार किया है, [तत् णिच्छिदो] यदि निश्चय से विचार किया जाये तो उनमें [एक्को जीवो] जीव तो एक ही है ।

शुद्ध जीव कैसा होता है?

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं । (49)
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥54॥
जीव चेतनागुण, शब्द-रस-रूप-गन्ध-व्यक्तिविहीन है ।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान उसका, ग्रहण नहिं है लिङ्ग से ॥४९॥

अन्वयार्थ : [जीवम्] जीव को [अरसम्] रस-रहित, [अरूवम्] रूप-रहित, [अगन्धम्] गन्ध-रहित, [अव्वत्तं] अव्यक्त अर्थात् इन्द्रिय-गोचर नहीं ऐसा, [चेदणागुणम्] चेतना जिसका गुण है ऐसा, [असद्दम्] शब्दरहित, [अलिंगग्गहणं] किसी चिह्न से ग्रहण न होनेवाला और

[अणिद्दिट्ठसंठाणम्] जिसका कोई आकार नहीं कहा जाता ऐसा [जाण] जान ।

शुद्ध जीव कैसा नहीं होता है?

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो । (50)
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाण ण संहणणं ॥55॥
जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो । (51)
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥56॥
जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई । (52)
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि ॥57॥
जीवस्य णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा । (53)
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥58॥
णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा । (54)
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥59॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स । (55)
जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा ॥60॥
नहिं वर्ण जीव के, गन्ध नहिं, नहिं स्पर्श, रस जीव के नहीं
नहिं रूप अर संहनन नहिं, संस्थान नहिं, तन भी नहीं ॥५०॥
नहिं राग जीव के , द्वेष नहिं,अरु मोह जीव के है नहीं
प्रत्यय नहीं, नहिं कर्म अरु नोकर्म भी जीव के नहीं ॥५१॥
नहीं वर्ग जीव के, वर्गणा नहिं, कर्म-स्पर्द्धक है नहीं
अध्यात्म-स्थान न जीव के, अनुभाग-स्थान भी हैं नहीं ॥५२॥
जीव के नहीं कुछ योगस्थान रू, बन्ध-स्थान भी है नहीं
नहिं उदय-स्थान न जीव के, अरु स्थान मार्गणा के नहीं ॥५३॥
स्थितिबन्ध-स्थान न जीव के, संक्लेश-स्थान भी हैं नहीं
जीव के विशुद्धि-स्थान, संयमलब्धि-स्थान भी हैं नहीं ॥५४॥
नहिं जीवस्थान भी जीव के गुणस्थान भी जीव के नहीं
ये सब ही पुद्गल-द्रव्य के, परिणाम हैं जानो यही ॥५५॥

अन्वयार्थ : [जीवस्स] जीव के [वण्णो] वर्ण [णत्थि] नहीं, [ण वि गंधो] गन्ध भी नहीं, [ण वि रसो] रस भी नहीं [य] और [ण वि फासो] स्पर्श भी नहीं, [ण वि रूवं] रूप भी नहीं, [ण सरीरं] शरीर भी नहीं, [ण वि संठाण] संस्थान भी नहीं, [ण संहणणं] संहनन भी नहीं; [जीवस्स] जीव के [णत्थि रागो] राग भी नहीं, [ण वि दोसो] द्वेष भी नहीं, [मोहो] मोह भी [णेव विज्जदे] विद्यमान नहीं, [णो पच्चया] प्रत्यय (आस्रव) भी नहीं, [ण कम्मं] कर्म भी नहीं [च] और [णोकम्मं वि] नोकर्म भी [से णत्थि] उसके नहीं है; [जीवस्स णत्थि वग्गो] जीव के वर्ग नहीं, [ण वग्गणा] वर्गणा नहीं, [णेव फड्ढया केई] कोई स्पर्धक भी नहीं, [णो अज्झप्पट्ठाणा] अध्यात्मस्थान भी नहीं [य] और [अणुभागठाणाणि] अनुभागस्थान भी [णेव] नहीं है; [जीवस्य] जीव के [णत्थि केई जोयट्ठाणा] कोई योगस्थान भी नहीं [वा] अथवा [ण बंधठाणा] बन्धस्थान भी नहीं, [य] और [उदयट्ठाणा] उदयस्थान भी [णेव] नहीं, [ण मग्गणट्ठाणया केई] कोई मार्गणास्थान भी नहीं हैं; [जीवस्य] जीव के [णो ठिदिबंधट्ठाणा] स्थितिबन्धस्थान भी नहीं [वा] अथवा [ण संकिलेसठाणा] संक्लेशस्थान भी नहीं, [विसोहिट्ठाणा] विशुद्धिस्थान भी [णेव] नहीं [वा] अथवा [संजमलद्धिठाणा] संयमलब्धिस्थान भी [णो] नहीं हैं; [य] और [जीवस्य] जीव के [जीवट्ठाणा] जीवस्थान भी [णेव] नहीं [वा] अथवा [गुणट्ठाणा] गुणस्थान भी [ण अत्थि] नहीं हैं; [जेण दु] क्योंकि [एदे सव्वे] यह सब [पोग्गलदव्वस्स] पुद्गलद्रव्य के [परिणामा] परिणाम हैं ।

व्यवहार से वर्णादि भाव जीव के, निश्चय से नहीं

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया । (56)
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥61॥
वर्णादि गुणस्थानान्त भाव जु, जीव के व्यवहार से
पर कोई भी ये भाव नहिं हैं, जीव के निश्चयविषैं ॥५६॥

अन्वयार्थ : [एदे] यह [वण्णमादीया] वर्ण को आदि लेकर [गुणठाणंता] गुणस्थान-पर्यन्त जो [भावा] भाव कहे गये वे [ववहारेण दु] व्यवहार-नय से तो [जीवस्स हवंति] जीव के हैं [दु] किन्तु [णिच्छयणयस्स] निश्चय-नय से [केई ण] कोई भी नहीं हैं ।

जीव का वर्णादि के साथ संयोग सम्बन्ध

एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो । (57)
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा ॥62॥
इन भाव से सम्बन्ध जीव का, क्षीर जलवत् जानना
उपयोग गुण से अधिक, तिससे भाव कोई न जीव का ॥५७॥

अन्वयार्थ : [एदेहिं य सम्बन्धो] इन वर्णादिक भावों के साथ जीव का सम्बन्ध [जहेव खीरोदयं] दूध और पानी जैसा (एक-क्षेत्रावगाह-रूप संयोग-सम्बन्ध) [मुणेदव्वो] जानना [य] और [ताणि] वे [तस्स दु ण होंति] उस जीव के नहीं हैं [जम्हा] क्योंकि जीव [उवओगगुणाधिगो] उनसे उपयोग-गुण से अधिक / भिन्न है ।

दृष्टांत द्वारा सम्बन्ध को बतलाते हैं

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी । (58)
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥63॥
तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं । (59)
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो ॥64॥
गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य । (60)
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥65॥
देखा लुटाते पंथमें को, पन्थ ये लुटात है-
जनगण कहे व्यवहार से, नहिं पन्थ को लुटात है ॥५८॥
त्यों वर्ण देखा जीव में इन कर्म अरु नोकर्म का
जिनवर कहें व्यवहार से, 'यह वर्ण है इस जीव का' ॥५९॥
त्यों गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, तन, संस्थान इत्यादिक सबैं
भूतार्थदृष्टा पुरुष ने, व्यवहारनय से वर्णये ॥६०॥

अन्वयार्थ : [पंथे मुस्संतं] जैसे मार्ग में जाते हुए व्यक्ति को लुटता हुआ [पस्सिदूण] देखकर '[एसो पंथो] यह मार्ग [मुस्सदि] लुटता है,' इसप्रकार [ववहारी लोगा] व्यवहारीजन [भणंति] कहते हैं; किन्तु परमार्थ से विचार किया जाये तो [कोई पंथो] कोई मार्ग तो [ण य मुस्सदे] नहीं लुटता, (मार्ग में जाता हुआ मनुष्य ही लुटता है) [तह] इसीप्रकार [जीवे] जीव में [कम्माणं णोकम्माणं च] कर्मों का और नोकर्मों का [वण्णं] वर्ण [पस्सिदुं] देखकर '[जीवस्य] जीव का [एस वण्णो] यह वर्ण है' इसप्रकार [जिणेहिं] जिनेन्द्रदेव ने [ववहारदो] व्यवहार से [उत्तो] कहा है [एवं] इसीप्रकार [गंधरसफासरूवा] गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, [देहो संठाणमाइया] देह, संस्थान आदि [जे य सव्वे] जो सब हैं, [ववहारस्स] वे सब व्यवहार से [णिच्छयदण्हू] निश्चय के देखनेवाले [ववदिसंति] कहते हैं ।

वर्णादि भाव के साथ जीव का तादात्म्य नहीं

तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादि । (61)
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई ॥66॥
संसारी जीव के वर्ण आदिक, भाव हैं संसार में
संसार से परिमुक्त के नहिं, भाव को वर्णादिके ॥६१॥
अन्वयार्थ : [वण्णादि] वर्णादि भाव [संसारत्थाण] संसार में स्थित [जीवाणं] जीवों के [तत्थ भवे] उस संसार में [होंति] होते हैं, और [संसारपमुक्काणं] संसार से मुक्त हुए जीवों के [हु] निश्चय से [वण्णादओ केई] वर्णादिक कोई भी (भाव) [णत्थि] नहीं ।

जीव का वर्णादि से तादात्म्य में दोष

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि । (62)
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ॥67॥
वर्णादिमय ही जीव हैं तुम यदी मानो इस तरह
तब जीव और अजीव में अन्तर करोगे किस तरह ॥६२॥
अन्वयार्थ : [जदि हि] यदि ऐसा ही [त्ति मण्णसे] मानोगे कि [एदे सव्वे भाव] यह (वर्णादिक) सर्वभाव [जीवो चेव हि] जीव ही हैं, [दु] तो [दे] तुम्हारे मत में [जीवस्साजीवस्स य] जीव और अजीव का [कोई] कोई [विसेसो] भेद [णत्थि] नहीं रहता ।

संसार अवस्था में जीव के वर्णादि से तादात्म्य में दोष

अह संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी । (63)
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा ॥68॥
एवं पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी । (64)
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोग्गलो पत्तो ॥69॥
मानो उन्हें वर्णादिमय जो जीव हैं संसार में ।
तब जीव संसारी सभी वर्णादिमय हो जायेंगे ॥६३॥
यदि लक्षणों की एकता से जीव हों पुद्गल सभी ।
बस इसतरह तो सिद्ध होंगे सिद्ध भी पुद्गलमयी ॥६४॥
अन्वयार्थ : [अह] अथवा यदि [तुज्झ] तुम्हारा मत यह हो कि [संसारत्थाणं जीवाणं] संसार में स्थित जीवों के ही [वण्णादी] वर्णादिक (तादात्म्य-स्वरूप से) [होंति] हैं, [तम्हा] तो इस कारण से [संसारत्था जीवा] संसार में स्थित जीव [रूवित्तमावण्णा] रूपित्व को प्राप्त हुये; [एवं] ऐसा होने से, [तहलक्खणेण] वैसा लक्षण (अर्थात् रूपित्व-लक्षण) तो पुद्गल-द्रव्य का होने से, [मूढमदी] हे मूढ़बुद्धि ! [पोग्गलदव्वं] पुद्गल-द्रव्य ही [जीवो] जीव कहलाया [य] और (मात्र संसार-अवस्था में ही नहीं किन्तु) [णिव्वाणमुवगदो वि] निर्वाण प्राप्त होने पर भी [पोग्गलो] पुद्गल ही [जीवत्तं] जीवत्व को [पत्तो] प्राप्त हुआ ।

अत: नाम-कर्म का उदय जीव नहीं है

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इन्दिया जीवा । (65)
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ॥70॥
एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा उ करणभूदाहिं । (66)
पयडीहिं पोग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो ॥71॥
जीव एक-दो-त्रय-चार-पञ्चेन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म हैं
पर्याप्त अनपर्याप्त जीव जु नामकर्म की प्रकृति है ॥६५॥
जो प्रकृति यह पुद्गलमयी, वह करणरूप बने अरे

उससे रचित जीवथान जो हैं, जीव क्यों हि कहाय वे ॥६६॥
अन्वयार्थ : [एक्कं च] एकेन्द्रिय, [दोण्णि] द्वीन्द्रिय, [तिण्णि य] और त्रीन्द्रिय, [चत्तारि य] चतुरिन्द्रिय, और [पंच इन्दिया] पन्चेन्द्रिय, [बादरपज्जत्तिदरा] बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त [जीवा] जीव ये [णामकम्मस्स] नामकर्म की [पयडीओ] प्रकृतियाँ हैं; [एदाहि य] इन [पयडीहिं] प्रकृतियों [पोग्गलमइहिं ताहिं] जो कि पुद्गल-मय-रूप से प्रसिद्ध हैं उनके द्वारा [करणभूदाहिं] करणस्वरूप होकर [णिव्वत्ता] रचित [जीवट्ठाणा] जो जीवस्थान (जीवसमास) हैं वे [जीवो] जीव [कहं] कैसे [भण्णदे] कहे जा सकते हैं ?

देह को जीव कहना व्यवहार

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव । (67)
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ॥72॥
पर्याप्त अनपर्याप्त जो, हैं सूक्ष्म अरु बादर सभी
व्यवहार से कही जीवसंज्ञा, देह को शास्त्रन महीं ॥६७॥
अन्वयार्थ : [जे] जो [पज्जत्तापज्जत्ता] पर्याप्त, अपर्याप्त [सुहुमा बादरा य] सूक्ष्म और बादर आदि [जे चेव] जितनी [देहस्य] देह की [जीवसण्णा] जीवसंज्ञा कही हैं वे सब [सुत्ते] सूत्र में [ववहारदो] व्यवहार से [उत्ता] कही हैं ।

अन्तरंग गुणस्थानादि भी जीव नहीं

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा । (68)
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता ॥73॥
मोहनकरम के उदय से, गुणस्थान जो ये वर्णये
वे क्यों बने आत्मा, निरन्तर जो अचेतन जिन कहे ? ॥६८॥
अन्वयार्थ : [जे इमे] जो यह [गुणट्ठाणा] गुणस्थान हैं वे [मोहणकम्मस्सुदया दु] मोहकर्म के उदय से होते हैं [वण्णिया] ऐसा (सर्वज्ञ द्वारा) वर्णन किया गया है; [ते] वे [जीवा] जीव [कह] कैसे [हवंति] हो सकते हैं कि जो [णिच्चम] सदा [अचेदणा] अचेतन [उत्ता] कहे गये हैं ?

आस्रव और जीव का भेद ना जानना - अप्रतिबुद्ध / अज्ञानी

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोह्नं पि । (69)
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो ॥74॥
कोहादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदी । (70)
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं ॥75॥
आतमा अर आस्रवों में भेद जब जाने नहीं
हैं अज्ञ तबतक जीव सब क्रोधादि में वर्तन करें ॥६९॥
क्रोधादि में वर्तन करें तब कर्म का संचय करें
हो कर्मबंधन इसतरह इस जीव को जिनवर कहें ॥७०॥
अन्वयार्थ : [जीवो] यह जीव [जाव] जब तक [तु आदासवाण दोह्नं पि] आत्मा और आस्रव इन दोनों के [विसेसंतरं] भिन्न-भिन्न लक्षणों को [ण वेदि] नहीं जानता [ताव] तब तक [सो अण्णाणी] वह अज्ञानी हुआ [कोहादिसु] क्रोधादिक आस्रवों में [वट्टदे] प्रवर्तता है । [कोहादिसु] क्रोधादिकों में [वट्टंतस्स तस्स] वर्तते हुए उसके [कम्मस्स] कर्मों का [संचओ होदी] संचय होता है । [खलु] निश्चयत: [एवं] इस प्रकार [जीवस्य] जीव के [बंधो] कर्मों का बंध [सव्वदरिसीहिं] सर्वज्ञदेवों ने [भणिदो] कहा है ।

अब कर्त्ता-कर्म रूप प्रवृत्ति की निवृत्ति किस प्रकार होती है उसे कहते हैं --

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव । (71)
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥76॥

आतमा अर आस्रवों में भेद जाने जीव जब
जिनदेव ने ऐसा कहा कि नहीं होवे बंध तब ॥७१॥

अन्वयार्थ : [जइया] जब [इमेण] यह [जीवेण] जीव [अप्पणो] आत्मा [य] और [आसवाण] आस्रवों का [विसेसंतरं] अन्तर और भेद [णादं] जानता [होदि] है, [तइया ण बंधो से] तब उसे बंध नहीं होता ।

ज्ञानी निर्बंध कैसे होता है ?

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च । (72)
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥77॥
इन आस्रवों की अशुचिता विपरीतता को जानकर
आतम करे उनसे निवर्तन दु:ख कारण मानकर ॥७२॥

अन्वयार्थ : [आसवाणं] आस्रवों की [असुचित्तं] अशुचिता [च] एवं [विवरीयभावं] विपरीतता [णादूण] जानकर [च] और वे [दुक्खस्स कारणं] दु:ख के कारण हैं - [इति य] अत: [जीवो] जीव [तदो] उनसे [णियत्तिं] निवृत्ति [कुणदि] करता है ।

आस्रवों से निवृत्ति का उपाय

अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो । (73)
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ॥78॥
मैं एक हूँ मैं शुद्ध निर्मम ज्ञान-दर्शन पूर्ण हूँ
थित लीन निज में ही रहूँ सब आस्रवों का क्षय करूँ ॥७३॥

अन्वयार्थ : [अहमेक्को खलु सुद्धो] मैं एक होने से निश्चयत: शुद्ध हूं [णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो] ममतारहित ज्ञान दर्शन से पूर्ण हूं [तम्हि ठिदो तच्चित्ते] ऐसे स्थित उस चैतन्य द्वारा [एदे सव्वे] इन सब (क्रोधादिक आस्रवों) को [खयं णेमि] क्षय को प्राप्त कराता हूं ।

ज्ञान और आस्रवों से निवृत्ति का एक काल

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य । (74)
दुक्खा दुक्खफलात्ति य णादूण णिवत्तदे तेहिं ॥79॥
ये सभी जीवनिबद्ध अध्रुव शरणहीन अनित्य हैं
दु:खरूप दु:खफल जानकर इनसे निवर्तन बुध करें ॥७४॥

अन्वयार्थ : [एते] ये (आस्रव) [जीवणिबद्धा] जीव के साथ निबद्ध है [अधुव] अध्रुव है [तहा] तथा [अणिच्चा] अनित्य है [य] और [असरणा] अशरण है [दुक्खा] दुःखरूप हैं [य] और [दुक्खफला] दुःखफल वाले हैं [इति णादूण] ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष [तेहिं] उनसे [णिवत्तदे] अलग हो जाता है ।

ज्ञानी की पहचान

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस य तहेव परिणामं । (75)
ण करेदि एदमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥80॥
करम के परिणाम को नोकरम के परिणाम को
जो ना करे बस मात्र जाने प्राप्त हो सद्ज्ञान को ॥८०॥

अन्वयार्थ : [य] जो [आदा] जीव [एनं] इस [कम्मस्स य परिणामं] कर्म के परिणाम को [य तहेव] और उसी भांति [णोकम्मस परिणामं] नोकर्म के परिणाम को [ण करेदि] नहीं करता है, परंतु [जाणदि] जानता है [सो] वह [णाणी] ज्ञानी [हवदि] है ।

आत्मा पुण्य-पापादि परिणामों का कर्त्ता -- व्यवहार

कत्ता आदा भणिदो ण य कत्ता केण सो उवाएण ।
धम्मादी परिणामे जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥81॥
अन्वयार्थ : किसी एक नय (व्यवहार नय) से आत्मा पुण्य-पापादि परिणामों का कर्त्ता है और किसी एक नय (निश्चय नय) से आत्मा इन परिणामों का कर्त्ता नहीं है, इस प्रकार जो जानता है वह ज्ञानी है ।

कर्मों को जानते हुए इस जीव का पुद्गल के साथ अतादात्म्य

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि णपरदव्वपज्जाए । (76)
णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मं अणेयविहं ॥82॥
परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें
बहुभाँति पुद्गल कर्म को ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥७६॥
अन्वयार्थ : [णाणी] ज्ञानी [अणेयविहं] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-द्रव्य के पर्याय रूप कर्मों को [जाणंतो वि] जानता हुआ भी [हु] निश्चय से [परदव्वपज्जाए] पर द्रव्य के पर्यायों में [ण वि परिणमदि] न ही परिणमित होता है [ण गिण्हदि] न ग्रहण करता है [उप्पज्जदि ण] और न उत्पन्न होता है ।

कर्मोदय के साथ अतादात्म्य

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए । (77)
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं ॥83॥
परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें
बहुभाँति निज परिणाम सब ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥७७॥
अन्वयार्थ : [णाणी] ज्ञानी [अणेयविहं] अनेक प्रकार के [सगपरिणामं] अपने परिणामों को [जाणंतो वि] जानता हुआ भी [हु] निश्चय से [परदव्वपज्जाए] पर द्रव्य के पर्यायों में [ण वि परिणमदि] न ही परिणमित होता है [ण गिण्हदि] न ग्रहण करता है [उप्पज्जदि ण] और न उत्पन्न होता है ।

ज्ञानी के कर्म-फल में कर्ता-कर्म भाव नहीं

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए । (78)
णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मप्फलमणंतं ॥84॥
परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें
पुद्गल करम का नंतफल ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥७८॥
अन्वयार्थ : [णाणी] ज्ञानी [अणेयविहं] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मप्फलमणंतं] अनन्त पुद्गल-कर्म के फलों को [जाणंतो वि] जानता हुआ भी [हु] निश्चय से [परदव्वपज्जाए] पर द्रव्य के पर्यायों में [ण वि परिणमदि] न ही परिणमित होता है [ण गिण्हदि] न ग्रहण करता है [उप्पज्जदि ण] और न उत्पन्न होता है ।

पुद्गल का भी जीव के साथ कर्ता-कर्मभाव नहीं

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए । (79)
पोग्गलदव्वं पि तहा परिणमदि सएहिं भावेहिं ॥85॥
परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें
इस ही तरह पुद्गल दरव निजभाव से ही परिणमें ॥७९॥
अन्वयार्थ : [पोग्गलदव्वं पि] पुद्गल द्रव्य भी [परदव्वपज्जाए] पर-द्रव्य के पर्याय में [तहा] उस प्रकार [ण वि परिणमदि] न तो परिणमन करता है, [ण गिण्हदि] उसको ग्रहण भी नहीं करता और [उप्पज्जदि ण] न उत्पन्न होता है, किन्तु [सएहिं भावेहिं] अपने भावों से ही

[परिणमदि] परिणमन करता है ।

जीव-पुद्गल के निमित्त-नैमित्तिक संबंध होने पर भी कर्ता-कर्म का अभाव

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति । (80)
पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥86॥
ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे । (81)
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ॥87॥
एदेण कारणेण दु कत्त आदा सएण भावेण । (82)
पोग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्त सव्वभावाणं ॥88॥
जीव के परिणाम से जड़कर्म पुद्गल परिणमें
पुद्गल करम के निमित्त से यह आतमा भी परिणमें ॥८०॥
आतम करे ना कर्मगुण ना कर्म आतमगुण करे
पर परस्पर परिणमन में दोनों परस्पर निमित्त हैं ॥८१॥
बस इसलिए यह आतमा निजभाव का कर्ता कहा
अन्य सब पुद्गलकरमकृत भाव का कर्ता नहीं ॥८२॥

अन्वयार्थ : [पोग्गला] पुद्गल [जीवपरिणामहेदुं] जीव के परिणाम का निमित्त पाकर [कम्मत्तं] कर्मत्व-रूप [परिणमंति] परिणमन करते हैं [तहेव] उसी प्रकार [जीवो वि] जीव भी [पोग्गलकम्मणिमित्तं] पुद्गल-कर्म का निमित्त पाकर [परिणमदि] परिणमन करता है । तो भी [जीवो] जीव [कम्मगुणे] कर्म के गुणों को [ण वि] नहीं [कुव्वदि] करता [तहेव] उसी भांति [कम्मं] कर्म [जीवगुणे] जीव के गुणों को नहीं करता । [दु] किंतु [दोण्हं पि] इन दोनों के [अण्णोण्णणिमित्तेण] परस्पर निमित्त-मात्र से [परिणामं] परिणाम [जाण] जानो [एदेण कारणेण दु] इसी कारण से [सएण भावेण] अपने भावों से [आदा] आत्मा [कत्त] कर्ता कहा जाता है [दु] परंतु [पोग्गलकम्मकदाणं] पुद्गल कर्म द्वारा किये गये [सव्वभावाणं] समस्त ही भावों का [ण कत्त] कर्ता नहीं है ।

जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व अपने परिणामों के साथ ही

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि । (83)
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥89॥
हे भव्यजन ! तुम जान लो परमार्थ से यह आतमा
निजभाव को करता तथा निजभाव को ही भोगता ॥८३॥

अन्वयार्थ : [णिच्छयणयस्स] निश्चय-नय के मत में [एवं] इस प्रकार [आदा] आत्मा [अप्पाणमेव हि] अपने को ही [करेदि] करता है [पुणो दु] और फिर [अत्ता] वह आत्मा [तं चेव अत्ताणं] अपने को ही [वेदयदि] भोगता है ऐसा तू [जाण] जान ।

लोक-व्यवहार ऐसा होता है

ववहारस्स दु आदा पोग्गलकम्मं करेदि णेयविहं । (84)
तं चेव पुणो वेयइ पोग्गलकम्मं अणेयविहं ॥90॥
अनेक विध पुद्गल करम को करे भोगे आतमा
व्यवहारनय का कथन है यह जान लो भव्यात्मा ॥८४॥

अन्वयार्थ : [ववहारस्स दु] परंतु व्यवहारनय के दर्शन में [आदा] आत्मा [णेयविहं] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मं] पुद्गल कर्म को [करेदि] करता है [तं चेव पुणो] और फिर उस ही [अणेयविहं] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-कर्म को [वेयइ] भोगता है ।

द्विक्रियावादियों की मान्यता दूषित

जदि पोग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा । (85)
दोकिरियावदिरित्ते पसज्जदे सो जिणावमदं ॥91॥
पुद्गल करम को करे भोगे जगत में यदि आतमा
द्विक्रिया अव्यतिरिक्त हों सम्मत न जो जिनधर्म में ॥८५॥

अन्वयार्थ : [जदि] यदि [आदा] आत्मा [इणं] इस [पोग्गलकम्म] पुद्गल-कर्म को [कुव्वदि] करे [च] और [तं चेव] उसी को [वेदयदि] भोगे तो [सो] वह [दोकिरियावदिरित्ते] आत्मा दो क्रियासे अभिन्न [पसज्जदे] प्रसक्त होता है सो यह [जिणावमदं] जिनदेव का अवमत है याने जिनमत से अलग है ।

द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि क्यों ?

जम्हा दु अत्तभावं पोग्गलभावं च दो वि कुव्वंति । (86)
तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो होंति ॥92॥
यदि आतमा जड़भाव चेतनभाव दोनों को करे
तो आतमा द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि अवतरे ॥८६॥

अन्वयार्थ : [जम्हा दु] जिस कारण [अत्तभावं] आत्मा के भाव को [च] और [पोग्गलभावं] पुद्गल के भाव को [दो वि] दोनों ही को आत्मा [कुव्वंति] करते हैं ऐसा कहते हैं [तेण दु] इसी कारण [दोकिरियावादिणो] दो क्रियाओं को एक के ही कहने वाले [मिच्छादिट्ठी] मिथ्यादृष्टि ही [हुंति] हैं ।

द्विक्रियावादी का विशेष व्याख्यान

पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं ।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं ॥93॥

अन्वयार्थ : [जह] जैसे यह [आदा] आत्मा [पुग्गलकम्मणिमित्तं] पौदगलिक ज्ञानावरणादि कर्म के उदय के निमित्त से होने वाले [अप्पणो भावं] अपने भावों को [कुणदि] करता है [तह] उसी प्रकार [पुग्गलकम्मणिमित्तं] पौदगलिक कर्म के निमित्त से होने वाले [अप्पणो भावं] अपने भावों को [वेददि] भोगता भी है ।

शुद्ध-चैतन्य स्वभावी जीव में मिथ्या-दर्शनादि विकारी भाव कैसे ?

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं । (87)
अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा ॥94॥
मिथ्यात्व-अविरति-जोग-मोहाज्ञान और कषाय हैं
ये सभी जीवाजीव हैं ये सभी द्विविधप्रकार हैं ॥८७॥

अन्वयार्थ : [पुण] और [मिच्छत्तं] जो मिथ्यात्व कहा गया था वह [दुविहं] दो प्रकार का है [जीवमजीवं] एक जीव मिथ्यात्व, एक अजीव मिथ्यात्व [तहेव] और उसी प्रकार [अण्णाणं] अज्ञान [अविरदि] अविरति [जोगो] योग [मोहो] मोह और [कोहादीया] क्रोधादि कषाय [इमे भावा] ये सभी भाव जीव अजीव के भेद से दो-दो प्रकार के हैं ।

मिथ्यात्वादिक जीव अजीव कहे हैं वे कौन हैं ?

पोग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं । (88)
उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छं च जीवो दु ॥95॥
मिथ्यात्व आदि अजीव जो वे सभी पुद्गल कर्म हैं

मिथ्यात्व आदि जीव हैं जो वे सभी उपयोग हैं ॥८८॥

अन्वयार्थ : [मिच्छं] जो मिथ्यात्व [जोगो] योग [अविरदि] अविरति [अणाणमज्जीवं] अज्ञान अजीव है वह तो [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-कर्म है [च] और जो [अण्णाणं] अज्ञान [अविरदि] अविरति [मिच्छं] मिथ्यात्व [जीवो] जीव है [दु] सो [उवओगो] उपयोग है ।

आत्म-भावों का कर्त्ता आत्मा और द्रव्य-कर्मादिमय पर-भावों का कर्ता पुद्गल

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स । (89)

मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो ॥96॥

मोहयुत उपयोग के परिणाम तीन अनादि से

जानो उन्हें मिथ्यात्व अविरतभाव अर अज्ञान ये ॥८९॥

अन्वयार्थ : [मोहजुत्तस्स] मोहयुक्त [उवओगस्स] उपयोग के [अणाई] अनादि से लेकर [तिण्णि परिणामा] तीन परिणाम हैं वे [मिच्छत्तं] मिथ्यात्व [अण्णाणं] अज्ञान [च अविरदिभावो] और अविरति-भाव [य णादव्वो] (ये तीन) जानना चाहिये ।

आत्मा के तीन-विकारी परिणामों का कर्त्तापना है

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो । (90)

जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥97॥

यद्यपी उपयोग तो नित ही निरंजन शुद्ध है

जिसरूप परिणत हो त्रिविध वह उसी का कर्ता बने ॥९०॥

अन्वयार्थ : [सुद्धो] यद्यपि शुद्धनय से [णिरंजणो] निरंजन / शुद्ध [उवओगो] उपयोग (आत्मा) है तो भी [एदेसु य] मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति इन तीनों के निमित्तभूत होने पर [तिविहो भावो] तीन प्रकार परिणाम वाला होता है । [सो] सो वह आत्मा [जं] जब जिस [भावं] भाव को [करेदि] स्वयं करता है [तस्स] उसी का [सो] वह [कत्ता] कर्ता होता है ।

कर्म-वर्गणा योग्य पुद्गल-द्रव्य अपने उपादान से कर्म-रूप में परिणत होता है

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स । (91)

कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं ॥98॥

आतम करे जिस भाव को उस भाव का कर्ता बने

बस स्वयं ही उस समय पुद्गल कर्मभाव से परिणमे ॥९१॥

अन्वयार्थ : [आदा] आत्मा [जं भावम्] जिस भाव को [कुणदि] करता है [तस्स भावस्स] उस भाव का [कत्ता] कर्ता [सो] वह [होदि] होता है [तम्हि] उसके कर्ता होने पर [पोग्गलं दव्वं] पुद्गल-द्रव्य [सयं] अपने आप [कम्मत्तं] कर्मरूप [परिणमदे] परिणमन करता है ।

वीतराग-स्वसंवेदन-ज्ञान के नहीं होने से नूतन कर्म बंध

परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करिंतो सो । (92)

अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ॥99॥

पर को करे निजरूप जो पररूप जो निज को करे

अज्ञानमय वह आतमा पर करम का कर्ता बने ॥९२॥

अन्वयार्थ : [अण्णाणमओ] अज्ञानमय [सो जीवो] वह जीव [परमप्पाणं] पर को आपरूप [कुव्वं] करता है [य] और [अप्पाणं पि] अपने को भी [परं] पररूप [करिंतो] करता हुआ [कम्माणं] कर्मों का [कारगो] कर्ता [होदि] होता है ।

ज्ञान से कर्मों का बंध नहीं होता

परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो । (93)

सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि ॥100॥
पररूप ना निज को करे पर को करे निज रूप ना
अकर्ता रहे पर करम का सद्ज्ञानमय वह आतमा ॥९३॥
अन्वयार्थ : [जीवो] जीव [परमप्पाणमकुव्वं] अपने को पररूप नहीं करता हुआ [य] और [परं] पर को [अप्पाणं पि] अपने रूप भी [अकुव्वंतो] नहीं करता हुआ [सो] वह [णाणमओ] ज्ञानमय [जीवो] जीव [कम्माणमकारगो] कर्मों का करने वाला नहीं [होदि] है ।

अज्ञान से ही नूतन कर्मों का बंध क्यों ?

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि कोहोऽहं । (94)
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥101॥
तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्मादी । (95)
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥102॥
त्रिविध यह उपयोग जब 'मैं क्रोध हूँ' इम परिणमें
तब जीव उस उपयोगमय परिणाम का कर्ता बने ॥९४॥
त्रिविध यह उपयोग जब 'मैं धर्म हूँ' इम परिणमें
तब जीव उस उपयोगमय परिणाम का कर्ता बने ॥९५॥
अन्वयार्थ : [एस] यह [तिविहो] तीन प्रकार का [उवओगो] उपयोग [अप्पवियप्पं] अपने में विकल्प [करेदि] करता है कि [कोहोऽहं] मैं क्रोध-स्वरूप हूं, सो वह [तस्स] उस [उवओगस्स] उपयोगरूप [अत्तभावस्स] अपने भाव का [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है ।
[एस] यह [तिविहो] तीन प्रकार का [उवओगो] उपयोग [धम्मादी] धर्म आदिक द्रव्य-रूप [अप्पवियप्पं] आत्म-विकल्प [करेदि] करता है याने उनको अपने जानता है सो वह [तस्स] उस [उवओगस्स] उपयोग-रूप [अत्तभावस्स] अपने भाव का [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है ।

कर्तृत्व का मूल कारण अज्ञान

एवं पराणि दव्वाणि अप्पय कुणदि मंदबुद्धीओ । (96)
अप्पाणं अवि य परं करेदि अण्णाणभावेण ॥103॥
इसतरह यह मंदबुद्धि स्वयं के अज्ञान से
निज द्रव्य को पर करे अरु परद्रव्य को अपना करे ॥९६॥
अन्वयार्थ : [एवं] ऐसे पूर्वकथित रीति से [मंदबुद्धीओ] अज्ञानी [अण्णाणभावेण] अज्ञान-भाव से [पराणि दव्वाणि] पर-द्रव्यों को [अप्पय] अपने-रूप [कुणदि] करता है [अवि य] और [अप्पाणं] अपने को [परं करेदि] पररूप करता है ।

सम्यग्ज्ञान होने पर कर्ता-कर्म भाव नष्ट

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो । (97)
एवं खलु जो जाणदि सो मुञ्चदि सव्वकत्तितं ॥104॥
बस इसतरह कर्ता कहें परमार्थ ज्ञायक आतमा
जो जानते यह तथ्य वे छोड़ें सकल कर्तापना ॥९७॥
अन्वयार्थ : [एदेण दु] इस पूर्वकथित कारण से [णिच्छयविदूहिं] निश्चय के जानने वाले ज्ञानियों के द्वारा [सो आदा] वह आत्मा [कत्ता परिकहिदो] कर्ता कहा गया है [एवं खलु] इस प्रकार निश्चय से [जो जाणदि] जो जानता है [सो] वह ज्ञानी हुआ [सव्वकत्तितं] सब कर्तृत्व को [मुञ्चदि] छोड़ देता है ।

पर-भावों को भी आत्मा करता है -- व्यवहारियों का मोह

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि । (98)

करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥105॥
जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज । (99)
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥106॥
जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे । (100)
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ॥107॥
व्यवहार से यह आतमा घटपटरथादिक द्रव्य का
इन्द्रियों का कर्म का नोकर्म का कर्ता कहा ॥९८॥
परद्रव्यमय हो जाय यदि पर द्रव्य में कुछ भी करे
परद्रव्यमय होता नहीं बस इसलिए कर्ता नहीं ॥९९॥
ना घट करे ना पट करे ना अन्य द्रव्यों को करे
कर्ता कहा तत्रूपपरिणत योग अर उपयोग का ॥१००॥

अन्वयार्थ : [आदा] आत्मा [ववहारेण] व्यवहार से [घडपडरधाणि दव्वाणि] घट पट रथ इन वस्तुओं को [करणाणि य] और इंद्रियादिक करणपदार्थों को [कम्माणि य] और ज्ञानावरणादिक तथा क्रोधादिक द्रव्यकर्म, भावकर्मों को [इह] तथा इस लोक में [विविहाणि] अनेक प्रकार के [णोकम्माण] शरीरादि नोकर्मों को [करेदि] करता है ।

[जदि] यदि [सो] वह आत्मा [परदव्वाणि] पर-द्रव्यों को [करेज्ज] करे [य] तो [णियमेण] नियम से वह आत्मा उन परद्रव्यों से [तम्मओ] तन्मय [होज्ज] हो जाय [जम्हा] परन्तु [ण तम्मओ] आत्मा तन्मय नहीं होता [तेण] इसी कारण [सो] वह [तेसिं] उनका [कत्ता] कर्ता [ण हवदि] नहीं है ।

[जीवो] जीव [घडं] घड़े को [ण करेदि] नहीं करता [णेव पडं] और पट को भी नहीं करता [णेव सेसगे दव्वे] शेष द्रव्यों को भी नहीं करता [जोगुवओगा] किन्तु जीव के योग और उपयोग दोनों [उप्पादगा] घटादिक के उत्पन्न करने वाले निमित्त हैं [तेसिं] सो उन दोनों (योग और उपयोग) का यह जीव [हवदि कत्ता] कर्ता है ।

ज्ञानी परभाव का अकर्ता, ज्ञान का ही कर्ता

जे पोग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा । (101)
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥108॥
ज्ञानावरण आदिक जु पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं
उनको करे ना आतमा जो जानते वे ज्ञानि हैं ॥१०१॥

अन्वयार्थ : [पोग्गलदव्वाणं परिणामा] पुद्गल द्रव्यों के परिणाम ये जो [णाणआवरणा] ज्ञानावरणादिक [होंति] हैं [ताणि] उनको [आदा] आत्मा [ण करेदि] नहीं करता, ऐसा जो [जाणदि] जानता है [सो] वह [णाणी] ज्ञानी [हवदि] है ।

अज्ञानी भी पर-द्रव्य के भाव का अकर्ता

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता । (102)
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥109॥
निजकृत शुभाशुभभाव का कर्ता कहा है आतमा
वे भाव उसके कर्म हैं वेदक है उनका आतमा ॥१०२॥

अन्वयार्थ : [आदा] आत्मा [जं] जिस [सुहमसुहं] शुभ अशुभ [भावं करेदि] भाव को करता है [खलु] वास्तव में [स] वह [तस्स] उस भाव का [कत्ता] कर्ता होता है [तं] वह भाव [तस्स] उसका [कम्मं] कर्म [होदि] होता है [सो दु अप्पा] और वही आत्मा [तस्स] उस भाव-रूप कर्म का [वेदगो] भोक्ता होता है।

किसी के द्वारा परभाव किया जाना अशक्य

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे । (103)
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥110॥
जब संक्रमण ना करे कोई द्रव्य पर-गुण-द्रव्य में
तब करे कैसे परिणमन इक द्रव्य पर-गुण-द्रव्य में ॥१०३॥

अन्वयार्थ : जो द्रव्य [जम्हि] जिस अपने [दव्वे] द्रव्य-स्वभाव में [गुणे] तथा अपने जिस गुण में वर्तता है [सो] वह [अण्णम्हि दु] अन्य [दव्वे] द्रव्य में तथा गुण में [ण संकमदि] संक्रमण नहीं करता (पलटकर अन्य में नहीं मिल जाता) [सो] वह [अण्णमसंकंतो] अन्य में नहीं मिलता हुआ [तं] वह (द्रव्य), (अन्य) [दव्वं] द्रव्य को [कह] कैसे [परिणामए] परिणमा सकता है ?

आत्मा पुद्गल-कर्मों का अकर्ता क्यों ?

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि । (104)
तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता ॥111॥
कुछ भी करे ना जीव पुद्गल कर्म के गुण-द्रव्य में
जब उभय का कर्ता नहीं तब किसतरह कर्ता कहें ? ॥१०४॥

अन्वयार्थ : [आदा] आत्मा [पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि] पुद्गल-मय कर्म में [दव्वगुणस्स य] द्रव्य का तथा गुण का कुछ भी [ण कुणदि] नहीं करता [तम्हि] उसमें (पुद्गलमय कर्म में) [तं उभयम्] उन दोनों को [अकुव्वंतो] नहीं करता हुआ [तस्स] उसका [सो कत्ता] वह कर्ता [कहं] कैसे हो सकता है?

'आत्मा द्रव्य-कर्मों का कर्त्ता है' यह उपचार मात्र है

जीवम्हि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं । (105)
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण ॥112॥
जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदंति जंपदे लोगो । (106)
ववहारेण तह कदं णाणावरणादि जीवेण ॥113॥
बंध का जो हेतु उस परिणाम को लख जीव में
करम कीने जीव ने बस कह दिया उपचार से ॥१०५॥
रण में लड़े भट पर कहे जग युद्ध राजा ने किया
बस उसतरह द्रवकर्म आतम ने किये व्यवहार से ॥१०६॥

अन्वयार्थ : [जीवम्हि] जीवके [हेदुभूदे] निमित्तरूप होनेपर होने वाले [बंधस्स दु] कर्मबन्ध के [परिणामं] परिणाम को [पस्सिदूण] देखकर [जीवेण] जीव के द्वारा [कदं कम्मं] कर्म किया गया यह [उवयारमेत्तेण] उपचार-मात्र से [भण्णदि] कहा जाता है । [जोधेहिं] योद्धाओं के द्वारा [कदे जुद्धे] युद्ध किये जाने पर [लोगो] लोक [इति] [जंपदे] ऐसा कहते हैं कि [राएण कदं] राजा ने युद्ध किया सो यह [ववहारेण] व्यवहार से कहना है [तह] उसी प्रकार [णाणावरणादि] ज्ञानावरणादि कर्म [कदं जीवेण] जीवके द्वारा किया गया, ऐसा कहना व्यवहार से है ।

आत्मा पुद्गल कर्म का कर्त्ता-भोक्ता -- व्यवहार

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य । (107)
आदा पोग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥114॥
जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो । (108)
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥115॥

ग्रहे बाँधे परिणमावे करे या पैदा करे
पुद्गल दरव को आतमा व्यवहारनय का कथन है ॥१०७॥
गुण-दोष उत्पादक कहा ज्यों भूप को व्यवहार से
त्यों जीव पुद्गल द्रव्य का कर्ता कहा व्यवहार से ॥१०८॥
अन्वयार्थ : [आदा] आत्मा [पोग्गलदव्वं] पुद्गल-द्रव्य को [उप्पादेदि] उत्पन्न करता है [य] और [करेदि] करता है [बंधदि] बाँधता है [परिणामएदि] परिणमाता है [य] तथा [गिण्हदि] ग्रहण करता है ऐसा [ववहारणयस्स] व्यवहार-नय का [वत्तव्वं] वचन है ।
[जह] जैसे [राया] राजा [दोसगुणुप्पादगो] प्रजा के दोष और गुणों का उत्पन्न करने वाला है [इति] ऐसा [ववहारा] व्यवहार से [आलविदो] कहा है [तह] उसी प्रकार [जीवो] जीव [दव्वगुणुप्पादगो] पुद्गल-द्रव्य में द्रव्य गुण का उत्पादक है, ऐसा [ववहारा] व्यवहार से [भणिदो] कहा गया है ।

पुद्गल के कथंचित परिणामी स्वभाव-पना

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तरो । (109)
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥116॥
तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो । (110)
मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥117॥
एदे अचेदणा खलु पोग्गलकम्मुदयसंभवा जम्हा । (111)
ते जदि करेंति कम्मं ण वि तेसिं वेदगो आदा ॥118॥
गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जम्हा । (112)
तम्हा जीवोऽकत्त गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥119॥
मिथ्यात्व अरु अविरमण योग कषाय के परिणाम हैं
सामान्य से ये चार प्रत्यय कर्म के कर्ता कहे ॥१०९॥
मिथ्यात्व आदि सयोगि-जिन तक जो कहे गुणथान हैं
बस ये त्रयोदश भेद प्रत्यय के कहे जिनसूत्र में ॥११०॥
पुद्गल करम के उदय से उत्पन्न ये सब अचेतन
करम के कर्ता हैं ये वेदक नहीं है आतमा ॥१११॥
गुण नाम के ये सभी प्रत्यय कर्म के कर्ता कहे
कर्ता रहा ना जीव ये गुणथान ही कर्ता रहे ॥११२॥
अन्वयार्थ : [चउरो] चार [सामण्णपच्चया] सामान्य प्रत्यय [खलु] वास्तव में [बंधकत्तारो] बंध के कर्ता [भण्णंति] कहे गये हैं वे [मिच्छत्तं] मिथ्यात्व [अविरमणं] अविरमण [कसायजोगा य] कषाय और योग [बोद्धव्वा] जानने चाहिये [य पुणो] और फिर [तेसिं वि] उनका भी [तेरसवियप्पो] तेरह प्रकार का [इमो] यह [भेदो] भेद [भणिदो] कहा गया है जो कि [मिच्छादिट्ठी आदी] मिथ्यादृष्टि को आदि लेकर [सजोगिस्स चरमंतं जाव] सयोग केवली तक है । [एदे] ये [खलु] निश्चय से [अचेदणा] अचेतन हैं [जम्हा] क्योंकि [पोग्गलकम्मुदयसंभवा] पुद्गल-कर्म के उदय से हुए हैं [जदि] यदि [ते] वे [करेंति कम्मं] कर्म को करते हैं तो करें, किन्तु [तेसिं वेदगो] उनका भोक्ता [वि] भी [ण आदा] आत्मा नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [गुणसण्णिदा] गुण नाम वाले [दु एदे पच्चया] ये प्रत्यय [कम्मं कुव्वंति] कर्म को करते हैं [तम्हा] इस कारण [जीवोऽकत्ता] जीव तो कर्म का कर्ता नहीं है [य] और [गुणा] ये गुण ही [कुव्वंति कम्माणि] कर्मों को करते हैं ।

जीव और क्रोधादि प्रत्ययों का एकत्व नहीं

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो । (113)

जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं ॥120॥
एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाऽजीवो । (114)
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ॥121॥
अह दे अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा । (115)
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ॥122॥
उपयोग जीव अनन्य ज्यों यदि त्यों हि क्रोध अनन्य हो
तो जीव और अजीव दोनों एक ही हो जायेंगे ॥११३॥
यदि जीव और अजीव दोनों एक हों तो इसतरह
का दोष प्रत्यय कर्म अर नोकर्म में भी आयगा ॥११४॥
क्रोधान्य है अर अन्य है उपयोगमय यह आतमा
तो कर्म अरु नोकर्म प्रत्यय अन्य होंगे क्यों नहीं ? ॥११५॥
अन्वयार्थ : [जह] जैसे [जीवस्स] जीव के [अणण्णुवओगो] उपयोग एकरूप है [तह] उसी प्रकार [जदि] यदि [कोहो वि] क्रोध भी [अणण्णो] एकरूप हो जाय तो [एवम्] इस तरह [जीवस्साजीवस्स य] जीव और अजीव के [अणण्णत्तम्] एकत्व [आवण्णं] प्राप्त हुआ [एवमिह] ऐसा होने से इस लोक में [य दु] जो [जीवो] जीव है [सो एव] वही [णियमदो] नियम से [तहा] वैसा ही [अजीवो] अजीव हुआ [एयत्ते] ऐसे दोनों के एकत्व होने में [अयं दोसो] यह दोष प्राप्त हुआ । [पच्चयणोकम्मकम्माणं] इसी प्रकार प्रत्यय नोकर्म-कर्म इनमें भी यही दोष जानना । [अह] अब इस दोष के भयसे [दे] तेरे मत में [कोहो] क्रोध [अण्णो] अन्य है और [उवओगप्पगो] उपयोग-स्वरूप [चेदा] आत्मा [अण्णु] अन्य [हवदि] है तो [जह कोहो] जैसे क्रोध है [तह] उसी प्रकार [पच्चय] प्रत्यय [कम्मं] कर्म [णोकम्ममवि] और नोकर्म ये भी [अण्णं] आत्मा से अन्य ही हैं, ऐसा निश्चय करो ।

पुद्गल के कथंचित परिणामी स्वभावपना

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण । (116)
जइ पोग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि ॥123॥
कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण । (117)
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥124॥
जीवो परिणामयदे पोग्गलदव्वाणि कम्मभावेण । (118)
ते सयमपरिणमंते कहं णु परिणामयदि चेदा ॥125॥
अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पोग्गलं दव्वं । (119)
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा ॥
णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चिय होदि पोग्गलं दव्वं । (120)
तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव ॥
यदि स्वयं ही कर्मभाव से परिणत न हो ना बँधे ही
तो अपरिणामी सिद्ध होगा कर्ममय पुद्गल दरव ॥११६॥
कर्मत्व में यदि वर्गणाएँ परिणमित होंगी नहीं
तो सिद्ध होगा सांख्यमत संसार की हो नास्ति ॥११७॥
यदि परिणमावे जीव पुद्गल दरव को कर्मत्व में
पर परिणमावे किसतरह वह अपरिणामी वस्तु को ॥११८॥
यदि स्वयं ही परिणमें वे पुद्गल दरव कर्मत्व में
मिथ्या रही यह बात उनको परिणमावें आतमा ॥११९॥

जड़कर्म परिणत जिसतरह पुद्गल दरव ही कर्म है
जड़ज्ञान-आवरणादि परिणत ज्ञान-आवरणादि हैं ॥१२०॥॥

अन्वयार्थ : [जइ पोग्गलदव्वमि] यदि पुद्गलद्रव्य [जीवे] जीव में [सयं] स्वयं [ण बद्धं] नहीं बँधा [कम्मभावेण] कर्मभाव से [सयं] स्वयं [ण परिणमदि] नहीं परिणमन करता है [इणं तदा] ऐसा मानो तो यह पुद्गलद्रव्य [अप्परिणामी] अपरिणामी [होदि] प्रसक्त होता है [य] और [कम्मइयवग्गणासु] कार्माणवर्गणाओं के [कम्मभावेण] कर्मभाव से [अपरिणमंतीसु] नहीं परिणमने पर [संसारस्स] संसार का [अभावो] अभाव [पसज्जदे] ठहरेगा [वा] अथवा [संखसमओ] सांख्य मत का प्रसंग आयेगा । [जीवो] यदि जीव ही [पोग्गलदव्वाणि] पुद्गल-द्रव्यों को [कम्मभावेण] कर्मभाव से [परिणामयदे] परिणमन कराता है ऐसा माना जाय तो [सयमपरिणमंते] आप ही परिणमन न करते [ते] उन पुद्गल-द्रव्यों को [चेदा] यह चेतन जीव [कहं णु] कैसे [परिणामयदि] परिणमा सकता है ? [अह] अथवा [पोग्गलं दव्वं] पुद्गल-द्रव्य [सयमेव हि] आप ही [कम्मभावेण] कर्मभाव से [परिणमदि] परिणमता है, ऐसा माना जाय तो [जीवो] जीव [कम्मं] कर्मरूप पुद्गलको [कम्मत्तम्] कर्म रूप से [परिणामयदे] परिणमाता है [इदि] ऐसा कहना [मिच्छा] झूठ हो जाता है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि [पोग्गलं दव्वं] पुद्गल-द्रव्य [कम्मपरिणदं] कर्म-रूप परिणत हुआ [णियमा चैव] नियम से ही [कम्मं] कर्म-रूप [होदि] होता है [तह] ऐसा होने पर [चिय] वह पुद्गल-द्रव्य ही [णाणावरणाइपरिणदं] ज्ञानावरणादिरूप परिणत [तं] पुद्गल-द्रव्य को [तच्चेव] ज्ञानावरणादि ही हैं, ऐसा [मुणसु] जानो ।

जीव-द्रव्य में कथंचित परिणामित्व

ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं । (121)
जइ एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि ॥126॥
अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहिं भावेहिं । (122)
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥127॥
पोग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं । (123)
तं सयमपरिणमंतं कहं णु परिणामयदि कोहो ॥128॥
अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी । (124)
कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ॥129॥
कोहुवजुत्ते कोहो माणवजुत्ते य माणमेवादा । (125)
माउवजुत्ते माया लोहुवजुत्ते हवदि लोहो ॥130॥
यदि स्वयं ही ना बँधे अर क्रोधादिमय परिणत न हो
तो अपरिणामी सिद्ध होगा जीव तेरे मत विषें ॥१२१॥
स्वयं ही क्रोधादि में यदि जीव ना हो परिणमित
तो सिद्ध होगा सांख्यमत संसार की हो नास्ति ॥१२२॥
यदि परिणमावे कर्मजड़ क्रोधादि में इस जीव को
पर परिणमावे किसतरह वह अपरिणामी वस्तु को ॥१२३॥
यदि स्वयं ही क्रोधादि में परिणमित हो यह आतमा
मिथ्या रही यह बात उसको परिणमावे कर्म जड़ ॥१२४॥
क्रोधोपयोगी क्रोध है मानोपयोगी मान है
मायोपयोगी माया है लोभोपयोगी लोभ है ॥१२५॥

अन्वयार्थ : [एस जीवो] यह जीव [कम्मे] कर्म में [ण सयं बद्धो] स्वयं बँधा नहीं है और [कोहमादीहिं] क्रोधादि भावों से [ण सयं परिणमदि] स्वयं नहीं परिणमता [जइ] यदि [एस] एसा [तुज्झ] तेरा मत है [तदा] तो [अप्परिणामी] वह जीव अपरिणामी [होदि] प्रसक्त होता है और [जीवे] जीव के [कोहादिएहिं भावेहिं] क्रोधादि भावों द्वारा [अपरिणमंतम्हि सयं] स्वयं परिणत न होने पर [संसारस्स

अभावो] संसार का अभाव [पसज्जदे] प्रसक्त हो जायगा [वा] अथवा [संखसमओ] सांख्यमत प्रसक्त हो जावेगा । यदि कोई कहे कि [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-कर्म जो [कोहो] क्रोध है वह [जीवं] जीव को [कोहत्तं] क्रोध-भाव-रूप [परिणामएदि] परिणमाता है तो [सयमपरिणमंतं] स्वयं न परिणत हुए [तं] जीव को [कोहो] क्रोधकर्म [कहं णु] कैसे [परिणामयदि] परिणमा सकता है ? [अह] यदि [एस दे बुद्धी] तेरी ऐसी समझ है कि [सयमप्पा] आत्मा अपने आप [कोहभावेण] क्रोध-भाव से [परिणमदि] परिणमन करता है तो [कोहो] पुद्गल-कर्म-रूप क्रोध [जीवं] जीव को [कोहत्तम्] क्रोधभावरूप [परिणामयदे] परिणमाता है [इदि मिच्छा] ऐसा करना मिथ्या ठहरता है । (इसलिये यह सिद्धान्त है कि) [कोहुवजुत्ते] क्रोध में उपयुक्त अर्थात् जिसका उपयोग क्रोधाकाररूप परिणमता है, ऐसा [आदा] आत्मा [कोहो] क्रोध ही है [य] और [माणवजुत्ते] मान से उपयुक्त होता हुआ [माणम्] मान ही है, [माउवजुत्ते] माया से उपयुक्त [माया] माया ही है [य] और [लोहुवजुत्ते] लोभ से उपयुक्त होता हुआ [लोहो] लोभ ही [हवदि] है ।

ज्ञानी-जीव ज्ञानभाव का कर्ता

जो संगं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं ।
तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विन्ति ॥131॥
जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विन्ति ॥132॥
जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं ।
तं धम्मसंगमुक्कं परमट्ठवियाणया विन्ति ॥133॥

अन्वयार्थ : जो साधु बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार के सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़कर अपने आपकी आत्मा को दर्शन-ज्ञानोपयोग-स्वरूप शुद्ध अनुभव करता है, उसको परमार्थ स्वरूप के जानने वाले गणधरादिक-देव निर्ग्रन्थ-साधु कहते हैं ।
जो साधु पर-पदार्थों में होने वाले मोह को छोड़कर अपने आप को निर्विकल्प-ज्ञान-स्वभाव-मय अनुभव करता है, उसको परमार्थ के जानने वाले तीर्थंकरादिक-परमेष्ठी मोह-रहित कहते हैं ।
जो कोई साधु व्यावहारिक-धर्म को छोड़कर शुद्ध-ज्ञान-दर्शानोपयोग-रूप आत्मा को जानता है उनको परमार्थ के ज्ञाता धर्म के परिग्रह से भी रहित कहते हैं ।

ज्ञानी और अज्ञानी के कर्तापन

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स । (126)
णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥134॥
जो भाव आतम करे वह उस कर्म का कर्ता बने
ज्ञानियों के ज्ञानमय अज्ञानि के अज्ञानमय ॥१२६॥

अन्वयार्थ : [आदा] आत्मा [जं भावम्] जिस भाव को [कुणदि] करता है [तस्स कम्मस्स] उस भावरूप कर्म का [सो] वह [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है । वहाँ [णाणिस्स] ज्ञानी के तो [स] वह भाव [णाणमओ] ज्ञान-मय है और [अणाणिस्स] अज्ञानी के [अण्णाणमओ] अज्ञानमय है ।

ज्ञानमय या अज्ञानमय भाव से क्या होता है?

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि । (127)
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि ॥135॥
अज्ञानमय हैं भाव इससे अज्ञ कर्ता कर्म का
बस ज्ञानमय हैं इसलिए ना विज्ञ कर्ता कर्म का ॥१२७॥

अन्वयार्थ : [अणाणिणो] अज्ञानी का [अण्णाणमओ भावो] अज्ञानमय भाव है [तेण] इस कारण [कम्माणि] अज्ञानी कर्मों को [कुणदि]

करता है [दु] और [णाणिस्स] ज्ञानी के [णाणमओ] ज्ञानमय भाव होता है [तम्हा] इसलिये वह ज्ञानी [कम्माणि] कर्मों को [ण] नहीं [कुणदि] करता ।

ज्ञानी के ज्ञानमय और अज्ञानी के अज्ञानमय ही भाव कैसे ?

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो । (128)
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥136॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो । (129)
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥137॥
ज्ञानमय परिणाम से परिणाम हों सब ज्ञानमय
बस इसलिए सद्ज्ञानियों के भाव हों सद्ज्ञानमय ॥१२८॥
अज्ञानमय परिणाम से परिणाम हों अज्ञानमय
बस इसलिए अज्ञानियों के भाव हों अज्ञानमय ॥१२९॥

अन्वयार्थ : [जम्हा] जिस कारण [णाणमया भावाओ च] ज्ञानमय भाव से [णाणमओ एव] ज्ञानमय ही [जायदे भावो] भाव उत्पन्न होता है । [तम्हा] इस कारण [णाणिस्स] ज्ञानी के [हु] निश्चय से [सव्वे भावा] सब भाव [णाणमया] ज्ञानमय हैं । और [जम्हा] जिस कारण [अण्णाणमया भावा च] अज्ञानमय भाव से [अण्णाणो एव] अज्ञानमय ही [जायदे भावो] भाव उत्पन्न होता है [तम्हा] इस कारण [अणाणिस्स] अज्ञानी के [अण्णाणमया] अज्ञानमय ही [भावा] भाव उत्पन्न होते हैं ।

दृष्टांत

कणयमया भावादो जायंते कुण्डलादओ भावा । (130)
अयमयया भावादो जह जायंते दु कडयादी ॥138॥
अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते । (131)
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥139॥
स्वर्णनिर्मित कुण्डलादि स्वर्णमय ही हों सदा
लोहनिर्मित कटक आदि लोहमय ही हों सदा ॥१३०॥
इस ही तरह अज्ञानियों के भाव हों अज्ञानमय
इस ही तरह सब भाव हों सद्ज्ञानियों के ज्ञानमय ॥१३१॥

अन्वयार्थ : [जह] जैसे [कणयमया भावादो] सुवर्णमय भाव से [कुण्डलादओ भावा] सुवर्णमय कुंडलादिक भाव [जायंते] उत्पन्न होते हैं [दु] और [अयमयया भावादो] लोहमय भाव से [कडयादी] लोहमयी कड़े इत्यादिक भाव [जायंते] उत्पन्न होते हैं [तहा] उसी प्रकार [अणाणिणो] अज्ञानी के [अण्णाणमया भावा] अज्ञानमय भाव से [बहुविहा वि] अनेक तरह के [अण्णाणमया भावा] अज्ञानमय भाव [जायंते] उत्पन्न होते हैं [दु] परन्तु [णाणिस्स] ज्ञानी के [सव्वे] सभी [णाणमया भावा] ज्ञानमय भाव [होंति] होते हैं ।

अज्ञानी अज्ञान-मय भावों द्वारा आगामी भाव-कर्म को प्राप्त होता है

अण्णाणस्स स उदओ जा जीवाणं अतच्चउवलद्धी । (132)
मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं ॥140॥
उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेइ अविरमणं । (133)
जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ ॥141॥
तं जाण जोग उदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो । (134)
सोहणमसोहण वा कायव्वो विरदिभावो वा ॥142॥

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागदं जं तु । (135)
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं ॥143॥
तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागदं जइया । (136)
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ॥144॥
निजतत्त्व का अज्ञान ही बस उदय है अज्ञान का
निजतत्त्व का अश्रद्धान ही बस उदय है मिथ्यात्व का ॥१३२॥
अविरमण का सद्भाव ही बस असंयम का उदय है
उपयोग की यह कलुषिता ही कषायों का उदय है ॥१३३॥
शुभ अशुभ चेष्टा में तथा निवृत्ति में या प्रवृत्ति में
जो चित्त का उत्साह है वह ही उदय है योग का ॥१३४॥
इनके निमित्त के योग से जड़ वर्गणाएँ कर्म की
परिणमित हों ज्ञान-आवरणादि वसुविध कर्म में ॥१३५॥
इस तरह वसुविध कर्म से आबद्ध जिय जब हो तभी
अज्ञानमय निजभाव का हो हेतु जिय जिनवर कही ॥१३६॥

अन्वयार्थ : [जीवाणं] जीवों के [जा] जो [अतच्चउवलद्धी] अन्यथा-स्वरूप का जानना है [स] वह [अण्णाणस्स] अज्ञान का [उदओ] उदय है [दु] और [जीवस्स] जीव के [असद्दहाणत्तं] जो तत्त्व का अश्रद्धान है वह [मिच्छत्तस्स] मिथ्यात्व का [उदओ] उदय है [दु] और [जीवाणं] जीवों के [जं] जो [अविरमणं] अत्यागभाव [हवेइ] है [असंजमस्स] वह असंयम का [उदओ] उदय है [दु] और [जीवाणं] जीवों के जो [कलुसोवओगो] मलिन उपयोग है [सो] वह [कसाउदओ] कषाय का उदय है [जो तु] और जो [जीवाणं] जीवों के [सोहणमसोहण वा] शुभरूप अथवा अशुभरूप [कायव्वो] प्रवृत्तिरूप [वा] अथवा [विरदिभावो] निवृत्ति-रूप [चिट्ठउच्छाहो] मन वचन काय की चेष्टा का उत्साह है [तं] उसे [जोग उदयं] योग का उदय [जाण] जानो । [एदेसु] इनके [हेदुभूदेसु] हेतुभूत होने पर [जं तु] जो [कम्मइयवग्गणागदं] कार्मण-वर्गणागत पुद्गल-द्रव्य [णाणावरणादिभावेहिं अट्ठविहं] ज्ञानावरण आदि भावों से आठ प्रकार [परिणमदे] परिणमन करता है [तं] वह [कम्मइयवग्गणागदं] कार्मणवर्गणागत पुद्गल-द्रव्य [जइया खलु] जब वास्तव में [जीवणिबद्धं] जीव में निबद्ध होता है [तइया दु] उस समय [परिणामभावाणं] उन अज्ञानादिक परिणाम भावों का [हेदू] कारण [जीवो] जीव [होदि] होता है ।

जीव का परिणाम पुद्गल-द्रव्य से पृथक् ही है

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादी । (137)
एवं जीवो कम्मं च दो वि रागादिमावण्णा ॥145॥
एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं । (138)
ता कम्मोदयहेदूहिं विणा जीवस्स परिणामो ॥146॥
जइ जीवेण सह च्चिय पोग्गलदव्वस्सकम्मपरिणामो । (139)
एवं पोग्गलजीवा हु दो वि कम्मत्तमावण्णा ॥
एकस्स दु परिणामो पोग्गलदव्वस्स कम्मभावेण । (140)
ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो ॥147॥
इस जीव के रागादि पुद्गलकर्म में भी हों यदी
तो जीववत् जड़कर्म भी रागादिमय हो जायेंगे ॥१३७॥
किन्तु जब जड़कर्म बिन ही जीव के रागादि हों
तब कर्मजड़ पुद्गलमयी रागादिमय कैसे बनें ॥१३८॥
यदि कर्ममय परिणाम पुद्गल द्रव्य का जिय साथ हो

तो जीव भी जड़कर्मवत् कर्मत्व को ही प्राप्त हो ॥१३९॥
किन्तु जब जियभाव बिन ही एक पुद्गल द्रव्य का
यह कर्ममय परिणाम है तो जीव जड़मय क्यों बने ? ॥१४०॥

अन्वयार्थ : [दु जीवस्स] यदि ऐसा माना जाय कि जीव के [रागादी] रागादिक [परिणामा] परिणाम [हु] वास्तव में [कम्मेण य सह] कर्म के साथ [होंति] होते हैं [एवं] इस प्रकार तो [जीवो कम्मं च] जीव और कर्म [दो वि] ये दोनों ही [रागादिमावण्णा] रागादि परिणाम को प्राप्त हो पड़ते हैं । [दु] परन्तु [रागमादीहिं] रागादिकों से [परिणामो] परिणमन तो [एकस्स जीवस्स] एक जीव का ही [जायदि] उत्पन्न होता है [ता] वह [कम्मोदयहेदूहिं विणा] कर्म के उदयरूप कारण से पृथक् [जीवस्स परिणामो] जीव का ही परिणाम है । [जइ] यदि [जीवेण सह च्चिय] जीव के साथ ही [पोग्गलदव्वस्सकम्मपरिणामो] पुद्गल-द्रव्य का कर्मरूप परिणाम होता है, तो [एवं] इस प्रकार [पोग्गलजीवा दो वि] पुद्गल और जीव दोनों [हु] ही [कम्मत्तमावण्णा] कर्मत्व को प्राप्त हो जावेंगे [दु] परंतु [कम्मभावेण] कर्मरूप से [परिणामो] परिणाम [एकस्स] एक [पोग्गलदव्वस्स] पुद्गल-द्रव्य का होता है [ता] इसलिये [जीवभावहेदूहिं विणा] जीवभाव कारण से पृथक् [कम्मस्स] कर्म का [परिणामो] परिणाम है ।

आत्मा में कर्म बद्धस्पृष्ट है कि अबद्धस्पृष्ट ?

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं । (141)
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं ॥148॥
कर्म से आबद्ध जिय यह कथन है व्यवहार का
पर कर्म से ना बद्ध जिय यह कथन है परमार्थ का ॥१४१॥

अन्वयार्थ : [जीवे कम्मं बद्धं] जीव में कर्म बँधा हुआ है [च पुट्ठं] तथा छुआ हुआ है [इदि ववहारणयभणिदं] ऐसा व्यवहारनय कहता है [दु जीवे कम्मं] और जीव में कर्म [अबद्धपुट्ठं हवदि] न बँधा है, न छुआ है ऐसा [सुद्धणयस्स] शुद्धनय का कथन है ।

नयविभाग जानने से क्या होता है ?

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं । (142)
पक्खादिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥149॥
अबद्ध है या बद्ध है जिय यह सभी नयपक्ष हैं
नयपक्ष से अतिक्रान्त जो वह ही समय का सार है ॥१४२॥

अन्वयार्थ : [जीवे] जीवमें [कम्मं बद्धमबद्धं] कर्म बँधा हुआ है अथवा नहीं बँधा हुआ है [एवं तु] इस प्रकार तो [णयपक्खं] नयपक्ष [जाण] जानो [पुण जो] और जो [पक्खादिक्कंतो] पक्ष से पृथक् हुआ [भण्णदि] कहा जाता है [सो समयसारो] वह समयसार है, निर्विकल्प आत्म-तत्त्व है।

पक्षातिक्रान्त ज्ञानी का क्या स्वरूप है ?

दोण्ह वि णयाण भणिदं जाणदि णवरं तु समयपडिबद्धो । (143)
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो ॥150॥
दोनों नयों को जानते पर ना ग्रहे नयपक्ष को
नयपक्ष से परिहीन पर निज समय से प्रतिबद्ध वे ॥१४३॥

अन्वयार्थ : [णयपक्खपरिहीणो] नयपक्ष से रहित [समयपडिबद्धो] अपने शुद्धात्मा से प्रतिबद्ध ज्ञानी पुरुष [दोण्ह वि] दोनों ही [णयाण] नयों के [भणिदं] कथन को [णवरं] केवल [जाणदि तु] जानता ही है [दु] परन्तु [णयपक्खं] नयपक्ष को [किंचि वि] किंचितमात्र भी [ण गिण्हदि] नहीं ग्रहण करता ।

पक्ष से दूरवर्ती ही समयसार है

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं । (144)

सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥151॥

विरहित सभी नयपक्ष से जो वह समय का सार है

है वही सम्यग्ज्ञान एवं वही समकित सार है ॥१४४॥

अन्वयार्थ : जो [सव्वणयपक्खरहिदो] सब नयपक्षों से रहित है [सो समयसारो] वही समयसार [भणिदो] कहा गया है । [एसो] यह समयसार ही [णवरि] केवल [सम्मद्दंसणणाणं] सम्यग्दर्शन ज्ञान [त्ति] ऐसे [ववदेसं] नाम को [लहदि] पाता है ।

शुभाशुभ कर्म के स्वभाव का वर्णन

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं । (145)

कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥152॥

सुशील हैं शुभ कर्म और अशुभ करम कुशील हैं ।

संसार के हैं हेतु वे कैसे कहें कि सुशील हैं ? ॥१४५॥

अन्वयार्थ : [कम्ममसुहं] अशुभ कर्म [कुसीलं] पाप-रूप (बुरा) [चावि] और [सुहकम्मं] शुभकर्म [सुसीलं] पुण्य-रूप (भला) [जाणह] ऐसा सर्व-साधारण जानते हैं, (परन्तु परमार्थ-दृष्टि से कहते हैं कि) [जं] जो प्राणी को [संसारं] संसार में ही [पवेसेदि] प्रवेश कराता है [तं] वह कर्म [सुसीलं] शुभ, अच्छा [कह] कैसे [होदि] हो सकता है ?

शुभ-अशुभ दोनों अविशेषता से बंध के कारण

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं । (146)

बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥153॥

ज्यों लोह बेड़ी बाँधती त्यों स्वर्ण की भी बाँधती

इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों कर्म बेड़ी बाँधती ॥१४६॥

अन्वयार्थ : [जह] जैसे [कालायसं णियलं] लोहे की बेड़ी [पुरिसं बंधदि] पुरुष को बांधती है [पि] और [सोवण्णियं पि] सुवर्ण की बेड़ी भी पुरुष को बाँधती है [एवं] इसी प्रकार [सुहमसुहं वा] शुभ तथा अशुभ [कदं कम्मं] किया हुआ कर्म [बंधदि जीवं] जीव को बांधता ही है ।

शुभ-अशुभ दोनों ही कर्मों का निषेध

तम्हा दु कुसीलेहि य रागं मा कुणह मा व संसग्गं । (147)

साहीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥154॥

दु:शील के संसर्ग से स्वाधीनता का नाश हो

दु:शील से संसर्ग एवं राग को तुम मत करो ॥१४७॥

अन्वयार्थ : [तम्हा दु] इस कारण [कुसीलेहि] उन दोनों कुशीलों से [रागं मा कुणह] प्रीति मत करो [व] अथवा [संसग्गं य] संबंध भी [मा] मत करो [हि] क्योंकि [कुसीलसंसग्गरायेण] कुशील के संसर्ग और राग से [साहीणो विणासो] स्वाधीनता का विनाश होता है ।

दोनों कर्मों के निषेध का दृष्टान्त

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्त । (148)

वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रागकरणं च ॥155॥

एमेव कम्मपयडीसीलसहावं च कुच्छिदं णादुं । (149)

वज्जंति परिहरंति य तस्संसग्गं सहावरदा ॥156॥
जगतजन जिसतरह कुत्सितशील जन को जानकर
उस पुरुष से संसर्ग एवं राग करना त्यागते ॥१४८॥
बस उसतरह ही कर्म कुत्सित शील हैं - यह जानकर
निजभावरत जन कर्म से संसर्ग को हैं त्यागते ॥१४९॥

अन्वयार्थ : [जह णाम] जैसे [कोवि पुरिसो] कोई पुरुष [कुच्छियसीलं] खोटे स्वभाव वाले [जणं वियाणित्त] किसी पुरुष को जानकर [तेण समयं] उसके साथ [संसग्गं रागकरणं च] संगति और राग करना [वज्जेदि] छोड़ देता है [एमेव च] उसी तरह [सहावरदा] स्वभाव में प्रीति रखने वाले ज्ञानी जीव [कम्मपयडीसीलसहावं] कर्म-प्रकृतियों के शील स्वभाव को [कुच्छिदं णादुं] निन्दनीय जानकर [वज्जंति] उससे राग छोड़ देते हैं [य] और [तस्संसग्गं] उसकी संगति भी [परिहरंति] छोड़ देते हैं ।

दोनों ही प्रकार के कर्म बंध के कारण होने से निषेध्य

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो । (150)
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥157॥
विरक्त शिवरमणी वरें अनुरक्त बाँधें कर्म को
जिनदेव का उपदेश यह मत कर्म में अनुरक्त हो ॥१५०॥

अन्वयार्थ : [रत्ते] रागी जीव [बंधदि कम्मं] कर्म बाँधता है और [विरागसंपत्ते] वैराग्य को प्राप्त [जीवो] जीव [मुच्चदि] कर्मों से छूटता है; [एसो] यह [जिणोवदेसो] जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है, [तम्हा] इसलिए [कम्मेसु] कर्मों (शुभाशुभ कर्मों) से [मा रज्ज] राग मत करो ।

अब ज्ञान को मोक्षका कारण सिद्ध करते हैं --

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी । (151)
तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥158॥
परमार्थ है है ज्ञानमय है समय शुध मुनि केवली
इसमें रहें थिर अचल जो निर्वाण पावें वे मुनी ॥१५१॥

अन्वयार्थ : [खलु] निश्चय से जो [सुद्धो] शुद्ध है, केवली है, [मुणी] मुनि है, [णाणी] ज्ञानी है, [परमट्ठो] परमार्थ है, [समओ] समय है, [तम्हि सहावे] उस (ज्ञान) स्वभाव में [ट्ठिदा] स्थित [मुणिणो] मुनि [पावंति णिव्वाणं] मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।

उस ज्ञान की विधि

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि । (152)
तं सव्वं बालतवं बालवदं बेंति सव्वण्हू ॥159॥
वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता । (153)
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥160॥
परमार्थ से हों दूर पर तप करें व्रत धारण करें
सब बालतप हैं बालव्रत वृषभादि सब जिनवर कहें ॥१५२॥
व्रत नियम सब धारण करें तप शील भी पालन करें
पर दूर हों परमार्थ से ना मुक्ति की प्राप्ति करें ॥१५३॥

अन्वयार्थ : [परमट्ठम्हि दु] ज्ञान-स्वरूप आत्मा में [अठिदो] अस्थित जो [तवं कुणदि] तप करता है [च] और [वदं धारेदि] व्रत को धारण करता है [तं सव्वं] उस सब तप व्रत को [सव्वण्हू] सर्वज्ञदेव [बालतवं] अज्ञान तप और [बालवदं] अज्ञान व्रत [बेंति] कहते हैं । [वदणियमाणि] व्रत और नियमों को [धरंता] धारण करते हुए [तहा] तथा [सीलाणि तवं च कुव्वंता] शील और तप को करते हुए भी [जे]

जो [परमट्ठबाहिरा] परमार्थभूत ज्ञान-स्वरूप आत्मा से बाह्य हैं [ते] वे [णिव्वाणं] मोक्ष को [ण] नहीं [विंदंति] पाते ।

पुण्यकर्म के पक्षपाती को प्रतिबोधन

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति । (154)
संसारगमणहेदुं पि मोक्खहेदुं अजाणंता ॥161॥
परमार्थ से हैं बाह्य वे जो मोक्षमग नहीं जानते
अज्ञान से भवगमन-कारण पुण्य को हैं चाहते ॥१५४॥
अन्वयार्थ : [जे] जो [परमट्ठबाहिरा] परमार्थ से बाह्य हैं [ते] वे जीव [मोक्खहेदुं] मोक्ष का कारण (ज्ञानस्वरूप आत्मा को) [अजाणंता] नहीं जानते हुए [संसारगमणहेदुं पि] संसार में गमन का हेतुभूत होने पर भी [पुण्णमिच्छंति अण्णाणेण] पुण्य को अज्ञान से चाहते हैं ।

परमार्थस्वरूप मोक्ष का कारण दिखलाते हैं

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं । (155)
रागादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥162॥
जीवादि का श्रद्धान सम्यक् ज्ञान सम्यग्ज्ञान है
रागादि का परिहार चारित - यही मुक्तिमार्ग है ॥१५५॥
अन्वयार्थ : [जीवादीसद्दहणं] जीवादिक पदार्थों का श्रद्धान तो [सम्मत्तं] सम्यक्त्व है और [तेसिमधिगमो] उन जीवादि पदार्थों का अधिगम [णाणं] ज्ञान है तथा [रागादीपरिहरणं] रागादिक का त्याग [चरणं] चारित्र है [एसो दु मोक्खपहो] सो यही मोक्ष का मार्ग है ।

परमार्थरूप मोक्ष के कारण से भिन्न कर्म का निषेध

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति । (156)
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ ॥163॥
विद्वानगण भूतार्थ तज वर्तन करें व्यवहार में
पर कर्मक्षय तो कहा है परमार्थ-आश्रित संत के ॥१५६॥
अन्वयार्थ : [विदुसा] पंडित जन [णिच्छयट्ठं] निश्चयनय के विषय को [मोत्तूण] छोड़कर [ववहारेण] व्यवहार में [पवट्टंति] प्रवृत्ति करते हैं [दु] किन्तु [परमट्ठमस्सिदाण] परमार्थभूत-आत्मस्वरूप का आश्रय करने वाले [जदीण] यतीश्वरों के ही [कम्मक्खओ विहिओ] कर्म का नाश कहा गया है ।

मोक्ष के कारणभूत दर्शन, ज्ञान और चारित्र का आच्छादक कर्म

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो । (157)
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं ॥164॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो । (158)
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं ॥165॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो । (159)
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं ॥166॥
ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का मैल के संयोग से
सम्यक्त्व भी त्यों नष्ट हो मिथ्यात्व मल के लेप से ॥१५७॥
ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का मैल के संयोग से
सद्ज्ञान भी त्यों नष्ट हो अज्ञानमल के लेप से ॥१५८॥
ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का मैल के संयोग से

चारित्र भी त्यों नष्ट होय कषायमल के लेप से ॥१५९॥

अन्वयार्थ : [जह] जैसे [वत्थस्स] वस्त्र का [सेदभावो] श्वेतपना [मलमेलणासत्ते] मल के मिलने से लिप्त होता हुआ [णासेदि] नष्ट हो जाता है [तह] उसी भांति [मिच्छत्तमलोच्छण्णं] मिथ्यात्व-मल से व्याप्त हुआ [सम्मत्तं] आत्मा का सम्यक्त्व-गुण [खु] निश्चय से [णादव्वं] (आच्छादित हो रहा है ऐसा) जानना चाहिए । [जह] जैसे [वत्थस्स सेदभावो] वस्त्र का श्वेतपना [मलमेलणासत्ते] मल के मेल से लिप्त होता हुआ [णासेदि] नष्ट हो जाता है [तह] उसी प्रकार [अण्णाणमलोच्छण्णं] अज्ञान-मल से व्याप्त हुआ [णाणं] आत्मा का ज्ञान भाव [होदि णादव्वं] (आच्छादित होता है ऐसा) जानना चाहिये तथा [जह] जैसे [वत्थस्स सेदभावो] कपड़े का श्वेतपना [मलमेलणासत्ते] मल के मिलने से व्याप्त होता हुआ [णासेदि] नष्ट हो जाता है [तह] उसी तरह [कसायमलोच्छण्णं] कषाय-मल से व्याप्त हुआ [चारित्तं पि] आत्मा का चारित्र भाव भी (आच्छादित हो जाता है ऐसा) [णादव्वं] जानना चाहिये ।

कर्म स्वयमेव बंध है

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो । (160)
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ॥167॥
सर्वदर्शी सर्वज्ञानी कर्मरज आछन्न हो
संसार को सम्प्राप्त कर सबको न जाने सर्वत: ॥१६०॥

अन्वयार्थ : [सो] वह आत्मा स्वभावतः [सव्वणाणदरिसी] सबका जानने देखने वाला है तो भी [कम्मरएण णियेणावच्छण्णो] अपने कर्मरूपी रज से आच्छादित हुआ [संसारसमावण्णो] संसार को प्राप्त होता हुआ [सव्वदो] सब प्रकार से [सव्वं] सब वस्तु को [ण विजानाति] नहीं जानता ।

कर्म का मोक्ष-हेतु-तिरोधायीपना

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं । (161)
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो ॥168॥
णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं । (162)
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो ॥169॥
चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहियं । (163)
तस्सोदयेण जीवो अचरितत्तो होदि णादव्वो ॥170॥
सम्यक्त्व प्रतिबंधक करम मिथ्यात्व जिनवर ने कहा
उसके उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होता है सदा ॥१६१॥
सद्ज्ञान प्रतिबंधक करम अज्ञान जिनवर ने कहा
उसके उदय से जीव अज्ञानी बने - यह जानना ॥१६२॥
चारित्र प्रतिबंधक करम जिन ने कषायों को कहा
उसके उदय से जीव चारित्रहीन हो यह जानना ॥१६३॥

अन्वयार्थ : [सम्मत्तपडिणिबद्धं] सम्यक्त्व को रोकने वाला [मिच्छत्तं] मिथ्यात्व है ऐसा [जिणवरेहि] जिनवर-देवों ने [परिकहियं] कहा है [तस्सोदयेण] उसके उदय से [जीवो] यह जीव [मिच्छादिट्ठि] मिथ्यादृष्टि हो जाता है [त्ति णादव्वो] ऐसा जानना चाहिये । [णाणस्स पडिणिबद्धं] ज्ञान को रोकने वाला [अण्णाणं] अज्ञान है ऐसा [जिणवरेहि परिकहियं] जिनवर देवों ने कहा है [तस्सोदयेण] उसके उदय से [जीवो] यह जीव [अण्णाणी होदि] अज्ञानी होता है ऐसा [णादव्वो] जानना चाहिए । [चारित्तपडिणिबद्धं] चारित्र को रोकने वाला [कसायं] कषाय है ऐसा [जिणवरेहि परिकहियं] जिनेन्द्र-देवों ने कहा है [तस्सोदयेण] उसके उदय से [जीवो] यह जीव [अचरित्तो होदि] अचारित्री हो जाता है ऐसा [णादव्वो] जानना चाहिये ।

आस्रव का स्वरूप

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु । (164)
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥171॥
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति । (165)
तेसिं पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो ॥172॥
मिथ्यात्व अविरति योग और कषाय चेतन-अचेतन
चितरूप जो हैं वे सभी चैतन्य के परिणाम हैं ॥१६४॥
ज्ञानावरण आदिक अचेतन कर्म के कारण बने
उनका भी तो कारण बने रागादि कारक जीव यह ॥१६५॥

अन्वयार्थ : [मिच्छत्तं अविरमणं] मिथ्यात्व, अविरति [य कसायजोगा] और कषाय योग [सण्णसण्णा दु] ये (चार आस्रव) संज्ञ व असंज्ञ हैं (चेतना के विकाररूप और जड़-पुद्गल के विकाररूप ऐसे भिन्न-भिन्न हैं); [जीवे बहुविहभेया] जीव में प्रकट हुए बहुत भेद वाले (संज्ञ आस्रव हैं वे) [तस्सेव अणण्णपरिणामा] उस जीव के ही अभेदरूप परिणाम हैं [दु ते] परन्तु वे (असंज्ञ आस्रव) [णाणावरणादीयस्स] ज्ञानावरण आदि [कम्मस्स कारणं होंति] कर्म के बंधने के कारण हैं और [तेसिं पि] उन का (असंज्ञ आस्रवों के नवीन कर्मबंध का निमित्तपना होने का निमित्त) भी [रागदोसादिभावकरो] राग-द्वेष आदि भावों का करने वाला [जीवो होदि] जीव होता है ।

ज्ञानी के उन आस्रवों का अभाव

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो । (166)
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो ॥173॥
है नहीं आस्रव बंध क्योंकि आस्रवों का रोध है
सदृष्टि उनको जानता जो कर्म पूर्वनिबद्ध हैं ॥१६६॥

अन्वयार्थ : [सम्मादिट्ठिस्स] सम्यग्दृष्टि के [आसवबंधो] आस्रव बंध [णत्थि] नहीं है [दु] किंतु [आसवणिरोहो] आस्रव का निरोध है [ते] उनको [अबंधंतो] नहीं बांधता हुआ [सो] वह [संते] सत्ता में मौजूद [पुव्वणिबद्धे] पहले बाँधे हुए कर्मों को [जाणदि] मात्र जानता है ।

राग, द्वेष, मोह भावों के ही आस्रवपना

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो । (167)
रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि ॥174॥
जीवकृत रागादि ही बंधक कहे हैं सूत्र में
रागादि से जो रहित वह ज्ञायक अबंधक जानना ॥१६७॥

अन्वयार्थ : [जीवेण कदो] जीव के द्वारा किया गया [रागादिजुदो भावो] रागादियुक्त भाव [बंधगो भणिदो] नवीन कर्म का बंध करने वाला कहा गया है [दु] परंतु [रागादिविप्पमुक्को] रागादिक भावों से रहित भाव [अबंधगो] बंध करने वाला नहीं है, [णवरि] केवल [जाणगो] जानने वाला ही है ।

रागादिक से न मिले ज्ञानमय भाव संभव

पक्के फलम्हि पडिए जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे । (168)
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेदि ॥175॥
पक्वफल जिसतरह गिरकर नहीं जुड़ता वृक्ष से
बस उसतरह ही कर्म खिरकर नहीं जुड़ते जीव से ॥१६८॥

अन्वयार्थ : [जह] जैसे [पक्के फलम्हि पडिए] पके फल के गिर जाने पर [पुणो] फिर [फलं] वह फल [विंटे] उस डंठल में [ण बज्झए]

नहीं बंधता, उसी तरह [जीवस्स] जीव के [कम्मभावे] कर्मभाव के [पडिए] झड़ जाने पर [पुणोदयमुवेदि] फिर वह उदय को प्राप्त नहीं होता ।

ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स । (169)
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वे वि णाणिस्स ॥176॥
जो बँधे थे भूत में वे कर्म पृथ्वीपिण्ड सम
वे सभी कर्म शरीर से हैं बद्ध सम्यग्ज्ञानि के ॥१६९॥
अन्वयार्थ : [तस्स णाणिस्स] उस ज्ञानी के [पुव्वणिबद्धा] पहले बँधे हुए [सव्वे वि] सभी [पच्चया] कर्म [पुढवीपिंडसमाणा] पृथ्वी के पिंड समान हैं [दु] और [ते] वे [कम्मसरीरेण] कार्मण शरीर के साथ [बद्धा] बंधे हुए हैं ।

ज्ञानी निरास्रव किस तरह ? उत्तर

चउविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं । (170)
समए समए जम्हा तेण अबंधो ति णाणी दु ॥177॥
जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि । (171)
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥178॥
प्रतिसमय विध-विध कर्म को सब ज्ञान-दर्शन गुणों से
बाँधे चतुर्विध प्रत्यय ही ज्ञानी अबंधक इसलिए ॥१७०॥
ज्ञानगुण का परिणमन जब हो जघन्यहि रूप में
अन्यत्व में परिणमे तब इसलिए ही बंधक कहा ॥१७१॥
अन्वयार्थ : [जम्हा] जिस कारण [चउविह] चार प्रकार के (आस्रव याने मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय व योग) [णाणदंसणगुणेहिं] ज्ञान दर्शन गुणों के द्वारा [समए समए] समय-समय पर [अणेयभेयं] अनेक भेद के कर्मों को [बंधंते] बाँधते हैं [तेण] इस कारण [णाणी दु] ज्ञानी तो [अबंधो ति] अबंध-रूप है ऐसा जानना चाहिये । [पुणो वि] फिर भी [जम्हा दु] जिस कारण [णाणगुणादो] ज्ञान-गुण [जहण्णादो] जघन्य ज्ञानगुण के कारण [अण्णत्तं] अन्य रूप [परिणमदि] परिणमन करता है [तेण दु] इसी कारण [णाणगुणो सो] वह ज्ञान-गुण [बंधगो भणिदो] कर्म का बंधक कहा गया है।

ज्ञान-गुण के जघन्य-भाव परिणमन के रहते ज्ञानी निरास्रव कैसे

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण । (172)
णाणी तेण दु बज्झदि पोग्गलकम्मेण विविहेण ॥179॥
ज्ञान-दर्शन-चरित गुण जब जघनभाव से परिणमे
तब विविध पुद्गल कर्म से इसलोक में ज्ञानी बँधे ॥१७२॥
अन्वयार्थ : [जं] क्योंकि [दंसणणाणचरित्तं] दर्शन-ज्ञान-चारित्र [जहण्णभावेण] जघन्य-भाव से [परिणमदे] परिणमन करता है [तेण दु] इस कारण से [णाणी] ज्ञानी [विविहेण] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मेण] पुद्गल कर्म से [बज्झदि] बँधता है ।

सभी द्रव्यास्रव की संतति के रहने पर भी ज्ञानी नित्य ही निरास्रव कैसे

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया अत्थि सम्मदिट्ठिस्स । (173)
उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण ॥180॥
होदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा । (174)
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ॥181॥

संता दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेह पुरिसस्स । (175)
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ॥182॥
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो । (176)
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥183॥
पहले बँधे सद्दृष्टिओं के कर्मप्रत्यय सत्त्व में
उपयोग के अनुसार वे ही कर्म का बंधन करें ॥१७३॥
बालवनिता की तरह वे सत्त्व में अनभोग्य हैं
पर तरुणवनिता की तरह उपभोग्य होकर बाँधते ॥१७४॥
अनभोग्य हो उपभोग्य हों वे सभी प्रत्यय जिसतरह
ज्ञान-आवरणादि वसुविध कर्म बाँधे उसतरह ॥१७५॥
बस इसलिए सद्दृष्टियों को अबंधक जिन ने कहा
क्योंकि आस्रवभाव बिन प्रत्यय न बंधन कर सके ॥१७६॥

अन्वयार्थ : [सम्मदिट्ठिस्स] सम्यग्दृष्टि के [सव्वे पुव्वणिबद्धा] समस्त पूर्व (अज्ञान अवस्था) में बांधे गये [पच्चया अत्थि] (मिथ्यात्वादि) आस्रव सत्तारूप हैं वे [उवओगप्पाओगं] उपयोग के प्रयोग करने रूप जैसे हों वैसे [कम्मभावेण] कर्मभाव से [बंधंते] बन्ध करते हैं । [दु] और [संता] सत्तारूप रहते हुए वे पूर्वबद्ध प्रत्यय उदय आये बिना [णिरुवभोज्जा] भोगने के अयोग्य होकर स्थित हैं [दु] लेकिन [तह बंधदि] वे उस तरह बँधते हैं [जह] जैसे कि [णाणावरणादिभावेहिं] ज्ञानावरणादि भावों के द्वारा [सत्तट्ठविहा] सात आठ प्रकार फिर [उवभोज्जा] भोगने योग्य [हवंति] हो जायें । [दु] क्योंकि [जहेह] जैसे इस लोक में [पुरिसस्स] पुरुष के [बाला इत्थी] बालिका स्त्री भोगने योग्य नहीं होती उस प्रकार [णिरुवभोज्जा] उपभोग के अयोग्य [होदूण] होकर भी [ते उवभोज्जे] वे ही जब भोगने योग्य होते हैं तब [बंधदि] जीव को, पुरुष को बांधते हैं अर्थात् जीव पराधीन हो जाता है, [जह] जैसे कि [तरुणी इत्थी] वही बाला स्त्री जवान होकर [णरस्स] पुरुष को बाँध लेती है अर्थात् पुरुष उसके आधीन हो जाता है यही बँधना है। [एदेण कारणेण दु] इसी कारणसे [सम्मादिट्ठी] सम्यग्दृष्टि [अबंधगो भणिदो] अबंधक कहा गया है क्योंकि [आसवभावाभावे] आस्रवभाव (राग-द्वेष-मोह) का अभाव होने पर [पच्चया] प्रत्यय (मिथ्यात्व आदि सत्ता में होने पर भी) [बंधगा] आगामी कर्म बंधके करने वाले [ण भणिदा] नहीं कहे गये हैं ।

ज्ञानी के राग-द्वेष-मोह नहीं अत: नवीन कर्मों का बंध नहीं

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स । (177)
तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥184॥
हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं । (178)
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ॥185॥
रागादि आस्रवभाव जो सद्दृष्टियों के वे नहीं
इसलिए आस्रवभाव बिन प्रत्यय न हेतु बंध के ॥१७७॥
अष्टविध कर्मों के कारण चार प्रत्यय ही कहे
रागादि उनके हेतु हैं उनके बिना बंधन नहीं ॥१७८॥

अन्वयार्थ : [रागो दोसो मोहो य] राग द्वेष और मोह [आसवा] ये आस्रव [णत्थि सम्मदिट्ठिस्स] सम्यग्दृष्टि के नहीं हैं [तम्हा] इसलिये [आसवभावेण विणा] आस्रव-भाव के बिना [पच्चया] द्रव्य-प्रत्यय [हेदू ण होंति] कर्म-बन्ध का कारण नहीं है । [चदुव्वियप्पो] मिथ्यात्व आदि चार प्रकार का [हेदू] हेतु [अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं] आठ प्रकार के कर्म के बँधने का कारण कहा गया है [तेसिं पि य] और उनमें (चार प्रकार के हेतुओं में) भी [रागादी] जीव के रागादिकभाव कारण हैं सो सम्यग्दृष्टि के [तेसिमभावे] उन रागादिक भावों का अभाव होने पर [ण बज्झंति] कर्म नहीं बँधते हैं ।

इसी का समर्थन दृष्टांत पूर्वक

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं । (179)
मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्ते ॥186॥
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं । (180)
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा ॥187॥
जगजन ग्रसित आहार ज्यों जठराग्नि के संयोग से
परिणमित होता वसा में मज्जा रुधिर मांसादि में ॥१७९॥
शुद्धनय परिहीन ज्ञानी के बँधे जो पूर्व में
वे कर्म प्रत्यय ही जगत में बाँधते हैं कर्म को ॥१८०॥
अन्वयार्थ : [जह] जैसे [पुरिसेणाहारो गहिदो] पुरुष के द्वारा ग्रहण किया गया आहार [सो उदरग्गिसंजुत्ते] वह उदराग्नि से युक्त हुआ [अणेयविहं] अनेक प्रकार [मंसवसारुहिरादी] मांस वसा रुधिर आदि [भावे परिणमदि] भावों रूप परिणमता है [तह दु णाणिस्स] उसी प्रकार ज्ञानी के [पुव्वं जे बद्धा] पूर्व बँधे जो [पच्चया] द्रव्य-प्रत्यय [ते] वे [बहुवियप्पं] बहुत भेदों वाले [बज्झंते कम्मं] कर्म को बांधते हैं । [ते जीवा] वे जीव [दु णयपरिहीणा] शुद्ध-नय से रहित हैं ।

भेद-विज्ञान की अभिवन्दना

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो । (181)
कोहो कोहे चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥188॥
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो । (182)
उवओगम्हि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि ॥189॥
एदं दु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स । (183)
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥190॥
उपयोग में उपयोग है क्रोधादि में उपयोग ना
बस क्रोध में है क्रोध पर उपयोग में है क्रोध ना ॥१८१॥
अष्टविध द्रवकर्म में नोकर्म में उपयोग ना
इस ही तरह उपयोग में भी कर्म ना नोकर्म ना ॥१८२॥
विपरीतता से रहित इस विधि जीव को जब ज्ञान हो
उपयोग के अतिरिक्त कुछ भी ना करे तब आतमा ॥१८३॥
अन्वयार्थ : [उवओगे उवओगो] उपयोग (शुद्ध-आत्मा) में उपयोग है [कोहादिसु] क्रोध आदिकों में [णत्थि को वि उवओगो] कोई भी उपयोग नहीं है [च ही कोहो एव कोहे] और निश्चय से क्रोध में ही क्रोध है [उवओगे णत्थि खलु कोहो] उपयोग में निश्चयत: क्रोध नहीं है, [अट्ठवियप्पे कम्मे] आठ प्रकार के(ज्ञानावरण आदि) कर्मों में [च णोकम्मे अवि] तथा (शरीर आदि) नोकर्मों में भी [णत्थि उवओगो] उपयोग नहीं है [य उवओगम्हि] और उपयोग में [कम्मं णोकम्मं चावि] कर्म और नोकर्म भी [णो अत्थि] नहीं है [एदं दु अविवरीदं णाणं] ऐसा सत्यार्थ ज्ञान [जीवस्स जइया] जीव के जब [होदि तइया] होता है तब [उवओगसुद्धप्पा] शुद्धोपयोगी आत्मा [किंचि भावं] कुछ भी भाव [ण कुव्वदि] नहीं करता ।

भेद-विज्ञान से ही शुद्धात्मा की प्राप्ति

जह कणयमग्गितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि । (184)
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥191॥
एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवादं । (185)

अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ॥192॥
ज्यों अग्नि से संतप्त सोना स्वर्णभाव नहीं तजे
त्यों कर्म से संतप्त ज्ञानी ज्ञानभाव नहीं तजे ॥१८४॥
जानता यह ज्ञानि पर अज्ञानतम आछन्न जो
वे आतमा जानें न मानें राग को ही आतमा ॥१८५॥
अन्वयार्थ : [जह] जैसे [कणयमग्गितवियं पि] सुवर्ण अग्नि से तप्त हुआ भी [तं] अपने [कणयभावं] सुवर्णपने को [ण परिच्चयदि] नहीं छोड़ता [तह] उसी तरह [णाणी] ज्ञानी [कम्मोदयतविदो] कर्मों के उदय से तप्त हुआ भी [णाणित्तं] ज्ञानीपने के स्वभाव को [ण जहदि] नहीं छोड़ता [एवं] इस तरह [णाणी जाणदि] ज्ञानी जानता है और [अण्णाणी] अज्ञानी [अण्णाणतमोच्छण्णो] अज्ञानरूप अंधकार से व्याप्त होता हुआ [आदसहावं] आत्मा के स्वभाव को [अयाणंतो] नहीं जानता हुआ [रागमेवादं मुणदि] राग को ही आत्मा मानता है ।

शुद्ध आत्मा की प्राप्ति से ही संवर

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो । (186)
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि ॥193॥
जो जानता मैं शुद्ध हूँ वह शुद्धता को प्राप्त हो
जो जानता अविशुद्ध वह अविशुद्धता को प्राप्त हो ॥१८६॥
अन्वयार्थ : [सुद्धं तु] शुद्ध-आत्मा को [वियाणंतो] जानता हुआ [जीवो] जीव [सुद्धं चेव] शुद्ध ही [अप्पयं लहदि] आत्मा को प्राप्त करता है [दु] और [असुद्धं] अशुद्ध आत्मा को [जाणंतो] जानता हुआ [असुद्धमेवप्पयं] अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है ।

संवर इस तरह से होता है

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोपुण्णपावजोएसु । (187)
दंसणणाणाह्मि ठिदो इच्छाविर ओ य अण्णह्मि ॥194॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा । (188)
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चेयेइ एयत्तं ॥195॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ । (189)
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥196॥
पुण्य एवं पाप से निज आतमा को रोककर
अन्य आशा से विरत हो ज्ञान-दर्शन में रहें ॥१८७॥
विरहित करम नोकरम से निज आत्म के एकत्व को
निज आतमा को स्वयं ध्यावें सर्व संग विमुक्त हो ॥१८८॥
ज्ञान-दर्शन मय निजातम को सदा जो ध्यावते
अत्यल्पकाल स्वकाल में वे सर्व कर्म विमुक्त हों ॥१८९॥
अन्वयार्थ : [जो] जो [अप्पा] जीव [अप्पाणमप्पणा] आत्मा को आत्मा के द्वारा [दोपुण्णपावजोगेसु] दो पुण्य-पाप योगों से [रुंधिऊण] रोककर [दंसणणाणम्हि] दर्शन-ज्ञान में [ठिदो] ठहरा हुआ [अण्णम्हि इच्छाविरदो] अन्य वस्तु में इच्छारहित [य] और [सव्वसंगमुक्को] सब परिग्रह से रहित हुआ [अप्पाणमप्पणो] आत्मा के द्वारा आत्मा को [झायदि] ध्याता है तथा [कम्मं णोकम्मं] कर्म नोकर्म को [ण वि] नहीं ध्याता और आप [चेदा] चेतनहार होता हुआ [एयत्तं] एकत्व को [चिंतेदि] विचारता है [सो] वह जीव [दंसणणाणमओ] दर्शन-ज्ञानमय और [अणण्णमओ] अनन्यमय होकर [अप्पाणं झायंतो] आत्मा का ध्यान करता हुआ [अचिरेण] थोड़े समय में [एव] ही [कम्मपविमुक्कं] कर्म-रहित [अप्पाणम्] आत्मा को [लहदि] प्राप्त करता है ।

आत्मा परोक्ष है, फिर उसका ध्यान कैसे

उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि ।
भण्णदि तहेव घिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य ॥197॥

अन्वयार्थ : [जह] जैसे किसी के [परोक्खं रूवं] परोक्षरूप [उवदेसेण] उपदेश द्वारा तथा लिखा [पस्सिदूण] देखकर [णादेदि] जाना जाता है, [तहेव] वैसे ही [जीवो] यह जीव [भण्णदि] वचनों के द्वारा कहा जाता है तथा [घिप्पदि] मन के द्वारा ग्रहण किया जाता है, वह मानों प्रत्यक्ष [दिट्ठो य णादो य] देखा गया व जाना गया है ।

कोविदिदच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज रूवमिणं ।
पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्टंतं ॥198॥

अन्वयार्थ : [कोविदिदच्छो साहू] कौन समझदार साधु यह [भणिज्ज] कह सकता है कि [रूवमिणं पच्चक्खमेव दिट्ठं] आत्म तत्त्व [संपडिकाले] वर्तमान काल में इस छद्मस्थ के प्रत्यक्ष हो जाता है क्योंकि इसका साक्षात्कार तो केवलज्ञान में ही होता है । परन्तु परोक्ष [परोक्खणाणे] मानसिक-ज्ञान के द्वारा वह छद्मस्थ ज्ञान से भी [पवट्टंतं] जाना जाता है ।

संवर के क्रम का व्याख्यान

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं । (190)
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो य जोगो य ॥199॥
हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो । (191)
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो ॥200॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायदि णिरोहो । (192)
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि ॥201॥
बंध के कारण कहे हैं भाव अध्यवसान ही
मिथ्यात्व अर अज्ञान अविरत-भाव एवं योग भी ॥१९०॥
इनके बिना है आस्रवों का रोध सम्यग्ज्ञानि के
अर आस्रवों के रोध से ही कर्म का भी रोध है ॥१९१॥
कर्म के अवरोध से नोकर्म का अवरोध हो
नोकर्म के अवरोध से संसार का अवरोध हो ॥१९२॥

अन्वयार्थ : [तेसिं] पूर्वोक्त राग-द्वेष-मोहरूप आस्रवों के [हेदू] हेतु [मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो] मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति भाव [जोगो य] और योग ये चार [अज्झवसाणाणि] अध्यवसान [सव्वदरिसीहिं] सर्वज्ञ-देवों ने [भणिदा] कहे हैं सो [णाणिस्स] ज्ञानी के [हेदुअभावे] इन हेतुओं का अभाव होने से [णियमा] नियम से [आसवणिरोहो] आस्रव का निरोध [जायदि] होता है और [आसवभावेण विणा] आस्रवभाव के बिना [कम्मस्स वि] कर्म का भी [णिरोहो] निरोध [जायदि] होता है [य] और [कम्मस्साभावेण] कर्म के अभाव से [णोकम्माणं पि] नोकर्मों का भी [णिरोहो] निरोध [जायदि] होता है [य] तथा [णोकम्मणिरोहेण] नोकर्म के निरोध होने से [संसारणिरोहणं] संसार का निरोध [होदि] होता है ।

द्रव्य-निर्जरा का स्वरूप

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं । (193)
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥202॥
चेतन अचेतन द्रव्य का उपभोग सम्यग्दृष्टि जन
जो इन्द्रियों से करें वह सब निर्जरा का हेतु है ॥१९३॥

अन्वयार्थ : [सम्मदिट्ठी] सम्यग्दृष्टि जीव [जं इंदियेहिम्] जो इंद्रियों से [अचेदणाणम्] अचेतन और [इदराणं] अन्य चेतन [दव्वाणम्] द्रव्यों

का [उवभोगम्] उपभोग [कुणदि] करता है [तं सव्वं] वह सब [णिज्जरणिमित्तं] निर्जरा का निमित्त है ।

भाव-निर्जरा का भी स्वरूप

दव्वे उवभुंजंते णियमा जायदि सुहं व दुक्खं वा । (194)
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अध णिज्जरं जादि ॥203॥
सुख-दुख नियम से हों सदा परद्रव्य के उपभोग से
अर भोगने के बाद सुख-दुख निर्जरा को प्राप्त हों ॥१९४॥
अन्वयार्थ : [दव्वे उवभुंजंते] द्रव्य-कर्म के व वस्तु के भोगे जाने पर [सुहं व दुक्खं] सुख अथवा दुःख [णियमा जायदि] नियम से उत्पन्न होता है । [वा] और [उदिण्णं] उदय में आये हुए [तं सुहदुक्खम्] उस सुख दुःख को [वेददि] अनुभव करता है [अध] फिर वह सुख-दुःख-रूप भाव [णिज्जरं जादि] निर्जरा को प्राप्त होता है ।

ज्ञान-शक्ति का वर्णन

जह विसमुवभुंजंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि । (195)
पोग्गलकम्मस्सुदयं तह भंजुदि णेव बज्झदे णाणी ॥204॥
जह मज्जं पिबमाणो अरदीभावेण मज्जदि ण पुरिसो । (196)
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव ॥205॥
ज्यों वैद्यजन मरते नहीं हैं जहर के उपभोग से
त्यों ज्ञानिजन बँधते नहीं हैं कर्म के उपभोग से ॥१९५॥
ज्यों अरुचिपूर्वक मद्य पीकर मत्त जन होते नहीं
त्यों अरुचि से उपभोग करते ज्ञानिजन बँधते नहीं ॥१९६॥
अन्वयार्थ : [जह] जैसे [विसमुवभुंजंतो वेज्जो पुरिसो] विष को भोगता हुआ वैद्य पुरुष [ण मरणमुवयादि] मरण को नहीं प्राप्त होता [तह] उसी तरह [पोग्गलकम्मस्सुदयं] पुद्गल कर्म के उदय को [भंजुदि] भोगता हुआ [णाणी] ज्ञानी भी [णेव बज्झदे] बंधता नहीं है । [जह] जैसे [पुरिसो] कोई पुरुष [मज्जं] मदिरा को [अरदीभावेण] अप्रीति से [पिबमाणो] पीता हुआ [मज्जदि ण] मतवाला नहीं होता [तहेव] उसी तरह [णाणी वि] ज्ञानी भी [दव्वुवभोगे अरदो] द्रव्य के उपभोग में विरक्त होता हुआ [ण बज्झदि] कर्मों से नहीं बँधता ।

दृष्टांत

सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो कोई । (197)
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि ॥206॥
ज्यों प्रकरणगत चेष्टा करें पर प्राकरणिक नहीं बनें
त्यों ज्ञानिजन सेवन करें पर विषय सेवक नहीं बनें ॥१९७॥
अन्वयार्थ : [कोई] कोई तो [सेवंतो वि] विषयों को सेवता हुआ भी [ण सेवदि] नहीं सेवन करता है और [असेवमाणो वि] कोई नहीं सेवन हुआ भी [सेवगो] सेवने वाला कहा जाता है [कस्स] जैसे किसी पुरुष के [पगरणचेट्ठा वि] किसी कार्य के करने की चेष्टा तो है [य सो] किन्तु वह [पायरणोत्] कार्य करने वाला स्वामी हो [इति ण होदि] ऐसा नहीं है ।

अब कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि अपने को और पर को विशेषरूप से इस प्रकार जानता है --

पोग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो । (199)
ण दु एस मज्ज भावो जाणगभावो हु अहमेक्को ॥207॥
पुद्गल करम है राग उसके उदय ये परिणाम हैं
किन्तु ये मेरे नहीं मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९९॥

अन्वयार्थ : [पोग्गलकम्मं रागो] राग पुद्गल-कर्म है [तस्स विवागोदओ] उसका विपाकोदय [हवदि एसो] यह है सो [एस] यह [मज्ज भावो] मेरा भाव [ण] नहीं है, क्योंकि [हु] निश्चय से [अहमेक्को जाणगभावो] मैं तो एक ज्ञायक-भाव-स्वरूप हूं ।

औपाधिक-भाव आत्म-स्वभाव क्यों नहीं ?

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो ।
परदव्वाणुवओगो ण हु देहो हवदि अण्णाणी ॥208॥

अन्वयार्थ : [विविहो] नाना प्रकार के [कम्मोदयफलविवागो] कर्मोदय के फल का विपाकरूप औपाधिक परिणाम [कह एस] वह क्यों [तुज्झ] तेरा स्वरूप [ण हवदि] नहीं है, कि [परदव्वाणुवओगो] पर-द्रव्य आत्म-स्वभाव [ण] नहीं है क्योंकि [देहो] देह तो [हु] स्पष्ट ही [हवदि अण्णाणी] जड़-स्वरूप है ॥२०८॥

औपाधिक भावों की परभावता जानने का फल

एवं सम्माद्दिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं । (200)
उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्चं वियाणंतो ॥209॥
इसतरह ज्ञानी जानते ज्ञायकस्वभावी आतमा
कर्मोदयों को छोड़ते निजतत्त्व को पहिचान कर ॥२००॥

अन्वयार्थ : [एवं] इस तरह [सम्माद्दिट्ठी] सम्यग्दृष्टि [अप्पाणं] अपने को [जाणगसहावं] ज्ञायक-स्वभाव [मुणदि] जानता है [च] और [तच्चं] वस्तु के यथार्थ स्वरूप को [वियाणंतो] जानता हुआ [कम्मविवागं] कर्म-विपाक-रूप [उदयं] उदय को [मुयदि] छोड़ता है ।

सम्यग्दृष्टि अपने और पर के स्वभाव का ज्ञाता होता है

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं । (198)
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ॥210॥
उदय कर्मों के विविध-विध सूत्र में जिनवर कहें ।
किन्तु वे मेरे नहीं मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९८॥

अन्वयार्थ : [जिणवरेहिं] जिनेन्द्र भगवान ने [कम्माणं] कर्मों के [उदयविवागो] उदय का विपाक (फल) [विविहो] अनेक प्रकार का [वण्णिदो] कहा है; किन्तु [ते] वे [मज्झ] मेरे [सहावा] स्वभाव [ण दु] नहीं हैं; [अहमेक्को] मैं तो एक [जाणगभावो] ज्ञायक-भाव [दु] ही हूँ ।

सम्यग्दृष्टि रागी कैसे नहीं होता? यदि ऐसा पूछें तो सुनिये --

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स । (201)
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ॥211॥
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो । (202)
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥212॥
अणुमात्र भी रागादि का सद्भाव है जिस जीव के
वह भले ही हो सर्व आगमधर न जाने जीव को ॥२०१॥
जो न जाने जीव को वे अजीव भी जानें नहीं
कैसे कहें सद्दृष्टि जीवाजीव जब जानें नहीं? ॥२०२॥

अन्वयार्थ : [हु जस्स] निश्चय से जिसके [रागादीणं] रागादिकों का [परमाणुमित्तयं पि] लेषमात्र भी [तु विज्जदे सो] मौजूद है तो वह [सव्वागमधरो वि] सर्व आगम को धारण करता हुआ भी [अप्पाणयं तु] आत्मा को [ण वि जाणदि] नहीं जानता [च] और [अप्पाणमयाणंतो] आत्मा को नहीं जानता हुआ [अणप्पयंवि अयाणंतो] पर को भी नहीं जानता हुआ, [जीवाजीवे अयाणंतो] जीव और

अजीव को नहीं जानता हुआ [कह होदि सम्मदिट्ठी] सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है?

ज्ञानी अनागत कर्मोदय के उपभोग की वांछा क्यों नहीं करता ?

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उभयं । (216)

तं जाणगो दु णाणी उभयं पि ण कंखदि कयावि ॥213॥

वेद्य-वेदक भाव दोनों नष्ट होते प्रतिसमय ।

ज्ञानी रहे ज्ञायक सदा ना उभय की कांक्षा करे ॥२१६॥

अन्वयार्थ : [जो वेददि] वेदन करनेवाला भाव और [वेदिज्जदि] वेदन में आनेवाला भाव - [उभयं] दोनों ही [समए समए विणस्सदे] समय-समय पर नष्ट हो जाते हैं । [तं जाणगो दु] इसप्रकार जाननेवाला [णाणी] ज्ञानी उन [उभयं पि] दोनों भावों को [ण कंखदि कयावि] कभी भी नहीं चाहता ।

इसका विस्तार करते हैं --

बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स । (217)

संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥214॥

बंध-भोग-निमित्त में अर देह में संसार में

सद्ज्ञानियों को राग होता नहीं अध्यवसान में ॥२१७॥

अन्वयार्थ : [बंधुवभोगणिमित्ते] बंध और उपभोग के निमित्तभूत [संसारदेहविसएसु] संसार-संबंधी और देह-संबंधी [अज्झवसाणोदएसु] अध्यवसान के उदयों में [णाणिस्स] ज्ञानी को [णेव उप्पज्जदे रागो] राग उत्पन्न नहीं होता ।

मिथ्यात्वादि अपध्यान मेरा परिग्रह नहीं

मज्झं परिग्गहो जइ तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज । (208)

णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ ॥215॥

यदि परिग्रह मेरा बने तो मैं अजीव बनूँ अरे ।

पर मैं तो ज्ञायकभाव हूँ इसलिए पर मेरे नहीं ॥२०८॥

अन्वयार्थ : [जदि] यदि [मज्झं परिग्गहो] परिग्रह मेरा हो [तदो] तो [अहमजीवदं] मैं अजीवपने को [गच्छेज्ज] प्राप्त हो जाऊँगा [तु जम्हा] तो चूंकि [अहं] मैं [णादेव] ज्ञाता ही हूं [तम्हा] इस कारण [ण परिग्गहो मज्झ] कुछ भी परिग्रह मेरा नहीं है ।

वह परमात्म-पद क्या है ? इसका समाधान आचार्य करते हैं --

आदह्मि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं । (203)

थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण ॥216॥

स्वानुभूतिगम्य है जो नियत थिर निजभाव ही

अपद पद सब छोड़ ग्रह वह एक नित्यस्वभाव ही ॥२०३॥

अन्वयार्थ : [आदह्मि] आत्मा में [अपदे] अपदरूप [दव्वभावे] द्रव्य-भाव-रूप सभी भावों को [मोत्तूण] छोड़कर [णियदं] निश्चित [थिरमेगम्] स्थिर, एक [तह] व [उवलब्भंतं सहावेण] स्वभाव से ही ग्रहण किये जाने वाले [इमं] इस प्रत्यक्ष अनुभव-गोचर [भावं] चैतन्य-मात्र भाव को हे भव्य! तू [गिण्ह] ग्रहण कर, वही तेरा पद है ।

अब पूछते हैं कि ज्ञानी पर-द्रव्य को क्यों नहीं ग्रहण करता ? उत्तर --

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं । (207)

अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो ॥217॥

आतमा ही आतमा का परिग्रह - यह जानकर ।
'पर द्रव्य मेरा है' - बताओ कौन बुध ऐसा कहे? ॥२०७॥
अन्वयार्थ : [अप्पाणम् तु] अपने आत्मा को ही [णियदं] निश्चित रूप से [अप्पणो परिगहं] अपना परिग्रह [वियाणंतो] जानता हुआ [को णाम बुहो] ऐसा कौन ज्ञानी पंडित है? जो [इमं परदव्वं] यह पर-द्रव्य [मम दव्वं] मेरा द्रव्य [हवदि] है [भणिज्ज] ऐसा कहे ।
छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं । (209)
जम्हा तम्हा गच्छदु तहवि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥218॥
छिद जाय या ले जाय कोइ अथवा प्रलय को प्राप्त हो ।
जावे चला चाहे जहाँ पर परिग्रह मेरा नहीं ॥२०९॥
अन्वयार्थ : [छिज्जदु वा] छिद जावे [भिज्जदु वा] अथवा भिद जावे [णिज्जदु वा] अथवा कोई ले जावे [अहव जादु विप्पलयं] अथवा नष्ट हो जावे [जम्हा तम्हा] चाहे जिस तरह से [गच्छदु तह वि] चला जावे, तो भी [हु] वास्तव में [ण परिग्गहो मज्झ] पर-द्रव्य परिग्रह मेरा नहीं है ।

और क्या ?
एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि । (206)
एदेण होहि तित्ते होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥219॥
इस ज्ञान में ही रत रहो सन्तुष्ट नित इसमें रहो
बस तृप्त भी इसमें रहो तो परमसुख को प्राप्त हो ॥२०६॥
अन्वयार्थ : [एदम्हि] इस ज्ञान में [णिच्चं] सदा [रदो होहि] रुचि से लीन होओ और [णिच्चमेदम्हि] सदा इसी में [संतुट्ठो होहि] संतुष्ट होओ और [एदेण] इसी से [होहि तित्ते] तृप्त होओ; [तुह] तेरे [उत्तमं सोक्खं] उत्तम सुख [होहदि] होगा ।

मत्यादि ज्ञान विशेष एक ज्ञान सामान्य के ही रूप
आभिणिसुदोधिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं । (204)
सो ऐसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि ॥220॥
मतिश्रुतावधिमन:पर्यय और केवलज्ञान भी
सब एक पद परमार्थ हैं पा इसे जन शिवपद लहें ॥२०४॥
अन्वयार्थ : [आभिणिसुदोधिमणकेवलं च] मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान [तं होदि एक्कमेव पदं] वह सब एक ज्ञान ही पद है [सो ऐसो परमट्ठो] यह वह परमार्थ है [जं लहिदुं] जिसको पाकर आत्मा [णिव्वुदिं जादि] मोक्ष-पद को प्राप्त होता है ।
णाणगुणेण विहीणा एदं तु पदं बहुवि ण लहंते । (205)
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥221॥
इस ज्ञानगुण के बिना जन प्राप्ति न शिवपद की करें
यदि चाहते हो मुक्त होना ज्ञान का आश्रय करो ॥२०५॥
अन्वयार्थ : [जदि] यदि तुम [कम्मपरिमोक्खं] कर्म का सब तरफ से मोक्ष करना [इच्छसि] चाहते हो [तु] तो [तं णियदमेदं] उस इस निश्चित ज्ञान को [गिण्ह] ग्रहण कर । क्योंकि [णाणगुणेण विहीणा] ज्ञान गुण से रहित [बहु वि] अनेकों पुरुष भी [एदं पदं] इस ज्ञान-स्वरूप पद को [ण लहंते] नहीं प्राप्त करते ।

इच्छा ही परिग्रह, जिसको इच्छा नहीं उसको परिग्रह नहीं
अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं । (210)
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥222॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्मं । (211)
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥223॥
धम्मच्थि अधम्मत्थी आयासं सुत्तमंग-पुव्वेसु ।
संगं च तहा णेयं दुयमणु अतिरियणेरइयं ॥224॥
अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे असणं । (212)
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥225॥
अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे पाणं । (213)
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥226॥
एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णेच्छदे णाणी । (214)
जाणगभावो णियदो णीरालंबो दु सव्वत्थ ॥227॥
है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे धर्म को ।
है परीग्रह ना धर्म का वह धर्म का ज्ञायक रहे ॥२१०॥
है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे अधर्म को ।
है परिग्रह ना अधर्म का वह अधर्म का ज्ञायक रहे ॥२११॥
है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे असन को ।
है परिग्रह ना असन का वह असन का ज्ञायक रहे ॥२१२॥
है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे पेय को ।
है परिग्रह ना पेय का वह पेय का ज्ञायक रहे ॥२१३॥
इत्यादि विध-विध भाव जो ज्ञानी न चाहे सभी को ।
सर्वत्र ही वह निरालम्बी नियत ज्ञायकभाव है ॥२१४॥
अन्वयार्थ : [अणिच्छो] इच्छारहित आत्मा [अपरिग्गहो] परिग्रह-रहित [भणिदो] कहा गया है [णाणी य] और ज्ञानी [णेच्छदे धम्मं] धर्म अर्थात् पुण्य को नहीं चाहता है [तेण सो] इस कारण वह [धम्मस्स] धर्म का याने पुण्य का [अपरिग्गहो] परिग्रही नहीं है [दु] वह तो [जाणगो] मात्र ज्ञायक [होदि] होता है ।
[अणिच्छो] इच्छारहित आत्मा [अपरिग्गहो] परिग्रह-रहित [भणिदो] कहा गया है [णाणी य] और ज्ञानी [णेच्छदे अधम्मं] अधर्म **अर्थ**ात् पाप को नहीं चाहता है [तेण सो] इस कारण वह [अधम्मस्स] अधर्म का याने पाप का [अपरिग्गहो] परिग्रही नहीं है [दु] वह तो [जाणगो] मात्र ज्ञायक [होदि] होता है ।
[अणिच्छो] इच्छारहित आत्मा [अपरिग्गहो] परिग्रह-रहित [भणिदो] कहा गया है [णाणी य] और ज्ञानी [णेच्छदे असणं] भोजन को नहीं चाहता है [तेण सो] इस कारण वह [असणस्स] भोजन का [अपरिग्गहो] परिग्रही नहीं है [दु] वह तो [जाणगो] मात्र ज्ञायक [होदि] होता है ।
[अणिच्छो] इच्छारहित आत्मा [अपरिग्गहो] परिग्रह-रहित [भणिदो] कहा गया है [णाणी य] और ज्ञानी [णेच्छदे पाणं] कुछ पीने को नहीं चाहता है [तेण सो] इस कारण वह [पाणस्स] पान का [अपरिग्गहो] परिग्रही नहीं है [दु] वह तो [जाणगो] मात्र ज्ञायक [होदि] होता है ।
[एमादिए दु] इस प्रकार याने पूर्वोक्त प्रकार इत्यादिक [विविहे] नाना प्रकार के [सव्वे भावे य] समस्त भावों को [णाणी] ज्ञानी [णेच्छदे] नहीं चाहता है । [दु] क्योंकि ज्ञानी [णियदो] नियत [जाणगभावो] ज्ञायकभावस्वरूप है, अतः [सव्वत्थ] सब में [णीरालंबो] निरालम्ब है ।

ज्ञानी के भोग का उदय वियोग बुद्धि पूर्वक, आगे भोगों की इच्छा नहीं

उप्पण्णोदय भोगो वियोगबुद्धीए तस्स सो णिच्चं । (215)
कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी ॥228॥
उदयगत जो भोग हैं उनमें वियोगीबुद्धि है ।

अर अनागत भोग की सद्ज्ञानि के कांक्षा नहीं ॥२१५॥

अन्वयार्थ : [उप्पण्णोदय भोगो] वर्तमान में उत्पन्न उदय का भोग है, [तस्स सो] वह ज्ञानी के [णिच्चं] सदा ही [वियोगबुद्धीए] वियोग-बुद्धि-पूर्वक होता है और [कंखामणागदस्स य उदयस्स] आगामी उदय की वांछा [ण कुव्वदे णाणी] ज्ञानी नहीं करता ।

ज्ञानी के अलिप्तता के कारण कर्म-बन्ध नहीं, और अज्ञानी के लिप्तता के कारण कर्म बन्ध

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो । (218)
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥229॥
अण्णाणी पुण रत्ते सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो । (219)
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥230॥
पंकगत ज्यों कनक निर्मल कर्मगत त्यों ज्ञानिजन
राग विरहित कर्मरज से लिप्त होते हैं नहीं ॥२१८॥
पंकगत ज्यों लोह त्यों ही कर्मगत अज्ञानिजन
रक्त हों परद्रव्य में अर कर्मरज से लिप्त हों ॥२१९॥

अन्वयार्थ : [जहा] जिसप्रकार [कद्दममज्झे] कीचड़ में पड़ा हुआ भी [कणयं] सोना [रजएण दु] कीचड़ से [णो लिप्पदि] लिप्त नहीं होता; उसीप्रकार [सव्वदव्वेसु] सर्व-द्रव्यों के प्रति [रागप्पजहो] राग छोड़नेवाला [णाणी] ज्ञानी [कम्ममज्झगदो] कर्मों के मध्य में रहा हुआ भी कर्मरज से लिप्त नहीं होता ।

[पुण] वैसे ही [सव्वदव्वेसु] सर्व-द्रव्यों के प्रति [रत्ते] रागी और [कम्ममज्झगदो] कर्मरज के मध्य स्थित [अण्णाणी] अज्ञानी [लिप्पदि कम्मरएण दु] कर्मरज से लिप्त हो जाता है [जहा] जिसप्रकार [कद्दममज्झे] कीचड़ में पड़ा हुआ [लोहं] लोहा ।

अब पूर्व-बद्ध कर्मों की निर्जरा न होकर, किस प्रकार मोक्ष होगा ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं --

णागफणीए मूलं णाइणितोएण गब्भणागेण ।
णागं होइ सुवण्णं धम्मंत्तं भच्छवाएण ॥231॥
कम्मं हवेइ किट्टं रागादि कालिया अह विभाओ ।
सम्मत्तणाणचरणं परमोसहमिदि वियाणाहि ॥232॥
झाणं हवेइ अग्गी तवयरणं भत्तली समक्खादो ।
जीवो हवेइ लोहं धमियव्वो परमजोईहिं ॥233॥

अन्वयार्थ : [णागफणीए मूलं] नागफणी की जड़, हथिनी का मूत्र, [णागं होइ भच्छवाएण] सिन्दूर एवं सीसा नामक धातु को धौंकनी से [धम्मंत्तं] धौंक कर अग्नि पर तपाने से [सुवण्णं] सुवर्ण बन जाता है ।

[कम्मं हवेइ किट्टं] कर्म कीट है, [रागादि कालिया अह विभाओ] रागादि कालिमा है, [सम्मत्तणाणचरणं परमोसहमिदि] सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परम औषधि है, [झाणं हवेइ अग्गी] ध्यान को अग्नि [वियाणाहि] जानो, [तवयरणं भत्तली समक्खादो] बारह प्रकार का तप धौंकनी है, [जीवो हवेइ लो] जीव लोहा है ।

मुक्ति की प्राप्ति के लिए [हं] उक्त धौंकनी को [धमियव्वो परमजोईहिं] परमयोगियों को धौंकना चाहिए ।

अब ज्ञानी के कर्म-बंध नहीं होता, उसे शंख के दृष्टांत से बतलाते हैं --

भुंजंतस्स वि विविहे सच्चित्तचित्तामिस्सिए दव्वे । (220)
संखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्हगो कादुं ॥234॥
तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्तचित्तामिस्सिए दव्वे । (221)
भुंजंतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं ॥235॥

जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण । (222)
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥236॥
तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिदूण । (223)
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥238॥
ज्यों अचित्त और सचित्त एवं मिश्र वस्तु भोगते
भी शंख के शुक्लत्व को ना कृष्ण कोई कर सके ॥२२०॥
त्यों अचित्त और सचित्त एवं मिश्र वस्तु भोगते
भी ज्ञानि के ना ज्ञान को अज्ञान कोई कर सके ॥२२१॥
जब स्वयं शुक्लत्व तज वह कृष्ण होकर परिणमे
तब स्वयं ही हो कृष्ण एवं शुक्ल भाव परित्यजे ॥२२२॥
इस ही तरह जब ज्ञानिजन निजभाव को परित्याग कर
अज्ञानमय हों परिणमित तब स्वयं अज्ञानी बनें ॥२२३॥

अन्वयार्थ : जिसप्रकार [विविहे] अनेक प्रकार के [सच्चित्तचित्तमिस्सिए दव्वे] सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों को [भुंजंतस्स वि] भोगते हुए, खाते हुए भी [संखस्स] शंख का [सेदभावो] श्वेतभाव [किण्हगो कादुं] कृष्णभाव को प्राप्त करने में [ण वि सक्कदि] शक्य नहीं है; [तह] उसीप्रकार [णाणिस्स वि] ज्ञानी भी [विविहे] अनेक प्रकार के [सच्चित्तचित्तमिस्सिए दव्वे] सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों को [भुंजंतस्स वि] भोगे तो भी उसके [णाणं] ज्ञान को [सक्कमण्णाणदं ण णेदुं] अज्ञानरूप नहीं किया जा सकता ।
[जइया स एव संखो] जब वही शंख स्वयं [तयं] उस [सेदसहावं] श्वेत स्वभाव को [पजहिदूण] छोड़कर [किण्हभावं] कृष्णभाव (कालेपन) को [गच्छेज्ज] प्राप्त होता है; [तइया] तब [सुक्कत्तणं पजहे] काला हो जाता है; [तह] उसीप्रकार [णाणी वि] ज्ञानी भी [जइया] जब [तयं] स्वयं [णाणसहावं] ज्ञानस्वभाव को [पजहिदूण] छोड़कर [अण्णाणेण] अज्ञानरूप [परिणदो] परिणमित होता है, [तइया] तब [अण्णाणदं गच्छे] अज्ञानता को प्राप्त हो जाता है ।

सराग-वीतराग परिणाम से बंध-मोक्ष

पुरिसो जह को वि इहं वित्तिणिमित्तं तु सेवदे रायं । (224)
तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए ॥239॥
एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं । (225)
तो सो वि देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पाए ॥240॥
जह पुण सो च्चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं । (226)
तो सो ण देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए ॥241॥
एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवदे ण कम्मरयं । (227)
तो सो ण देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पाए ॥242॥
आजीविका के हेतु नर ज्यों नृपति की सेवा करे ।
तो नरपती भी सबतरह उसके लिए सुविधा करे ॥२२४॥
इस ही तरह जब जीव सुख के हेतु सेवे कर्मरज ।
तो कर्मरज भी सबतरह उसके लिए सुविधा करे ॥२२५॥
आजीविका के हेतु जब नर नृपति सेवा ना करे ।
तब नृपति भी उसके लिए उसतरह सुविधा ना करे ॥२२६॥
त्यों कर्मरज सेवे नहीं जब जीव सुख के हेतु से ।
तो कर्मरज उसके लिए उसतरह सुविधा ना करे ॥२२७॥

अन्वयार्थ : [पुरिसो जह को वि इहं] जैसे यहाँ कोई भी पुरुष [वित्तिणिमित्तं तु सेवदे रायं] आजीविका के लिए राजा की सेवा करता है [तो सो वि राया] तो वह राजा भी उसे [देदि विविहे भोगे सुहुप्पाए] सुख उत्पन्न करने वाले अनेक भोग देता है [एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं] ऐसे ही जीव पुरुष कर्म-राज की [सेवदे सुहणिमित्तं] सुख-प्राप्ति के लिए सेवा करता है [तो सो वि कम्मो] तो वह कर्म भी [देदि विविहे भोगे सुहुप्पाए] सुख उत्पन्न करने वाले अनेक भोग देता है ।

[जह पुण सो च्चिय पुरिसो] जैसे फिर वही पुरुष [वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं] आजीविका के लिए राजा की सेवा नहीं करता [तो सो राया] तो वह राजा भी उसे [ण देदि विविहे भोगे सुहुप्पाए] सुख उत्पन्न करने वाले अनेक भोग नहीं देता [एमेव सम्मदिट्ठी] इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि [विसयत्थं] विषय के लिए [सेवदे ण कम्मरयं] कर्म-राज की सेवा नहीं करता [तो सो कम्मो] तो वह कर्म भी उसे [ण देदि विविहे भोगे सुहुप्पाए] सुख उत्पन्न करने वाले अनेक भोग नहीं देता ।

सम्यक्त्वी भय-रहित होता है

सम्माद्दिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण । (228)
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥243॥
नि:शंक हों सद्दृष्टि बस इसलिए ही निर्भय रहें ।
वे सप्त भय से मुक्त हैं इसलिए ही नि:शंक हैं ॥२२८॥

अन्वयार्थ : [सम्माद्दिट्ठी जीवा णिस्संका होंति] सम्यग्दृष्टि जीव नि:शंक होते हैं, [णिब्भया तेण] इसीकारण निर्भय भी होते हैं [सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा] चूँकि वे सप्तभयों से रहित होते हैं [तम्हा दु णिस्संका] इसलिए नि:शंक होते हैं ।

नि:शंकित अंग का स्वरूप

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे । (229)
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥244॥
जो कर्मबंधन मोह कर्ता चार पाये छेदते
वे आतमा नि:शंक सम्यग्दृष्टि हैं - यह जानना ॥२२९॥

अन्वयार्थ : जो [छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे] कर्मबंध संबंधी मोह करनेवाले (मिथ्यात्वादि भावरूप) [चत्तारि वि पाए] चारों भेदों को छेदता है [सो णिस्संको चेदा] उस नि:शंक चेतयिता को [सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो] सम्यग्दृष्टि जानो ।

नि:कांक्षित अंग का स्वरूप

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु । (230)
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥245॥
सब धर्म एवं कर्मफल की ना करें आकांक्षा
वे आतमा नि:कांक्ष सम्यग्दृष्टि हैं - यह जानना ॥२३०॥

अन्वयार्थ : [जो दु ण करेदि कंखं] जो दोनों आकांक्षा नहीं करता, [कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु] कर्मों के फलों के प्रति और सर्व धर्मों के प्रति; [सो णिक्कंखो चेदा] उस नि:कांक्षित चेतायिता को [सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो] सम्यग्दृष्टि जानो ।

निर्वचिकित्सा व अमूढदृष्टि अंग का स्वरूप

जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं । (231)
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥246॥
जो हवदि असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु । (232)
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥247॥
जो नहीं करते जुगुप्सा सब वस्तुधर्मों के प्रति

वे आतमा ही निर्जुगुप्सक समकिती हैं जानना ॥२३१॥
सर्व भावों के प्रति सद्दृष्टि हैं असंमुढ़ हैं
अमूढ़दृष्टि समकिती वे आतमा ही जानना ॥२३२॥
अन्वयार्थ : [जो ण करेदि दुगुंछं चेदा] जो चेतयिता (ज्ञायक) जुगुप्सा (ग्लानि) नहीं करता [सव्वेसिमेव धम्माणं] सभी धर्मों के प्रति [सो खलु णिव्विदिगिच्छो] उस यथार्थ निर्विचिकित्सक को [सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो] सम्यग्दृष्टि जानो ।
[जो हवदि असम्मूढो चेदा] जो चेतयिता (ज्ञायक) अमूढ़ है, [सद्दिट्ठि सव्वभावेसु] समस्त भावों में यथार्थ दृष्टिवाला है; [सो खलु अमूढदिट्ठी] उस यथार्थ अमूढ़-दृष्टा को [सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो] सम्यग्दृष्टि जानो ।

उपगूहन और स्थितिकरण अंग का स्वरूप

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं । (233)
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥248॥
उम्मग्गं गच्छतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा । (234)
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥249॥
जो सिद्धभक्ति युक्त हैं सब धर्म का गोपन करें
वे आतमा गोपनकरी सद्दृष्टि हैं यह जानना ॥२३३॥
उन्मार्गगत निजभाव को लावें स्वयं सन्मार्ग में
वे आतमा थितिकरण सम्यग्दृष्टि हैं यह जानना ॥२३४॥
अन्वयार्थ : [जो सिद्धभत्तिजुत्ते] जो सिद्धों की भक्ति से युक्त [उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं] परवस्तुओं के सभी धर्मों को गोपनेवाला है; [सो उवगूहणकारी] उस उपगूहनधारक को [सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो] सम्यग्दृष्टि जानो ।
[उम्मग्गं गच्छतं सगं पि] उन्मार्ग में जाते हुए अपने-आप को भी [मग्गे ठवेदि जो चेदा] जो चेतायिता (ज्ञायक) सन्मार्ग में स्थापित करता है, [सो ठिदिकरणाजुत्ते] उस स्थितिकरण से युक्त को [सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो] सम्यग्दृष्टि जानो ।

वात्सल्य और प्रभावना अंग का धारी सम्यग्दृष्टि का वर्णन

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्हि । (235)
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥250॥
विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा । (236)
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥251॥
मुक्तिमगगत साधुत्रय प्रति रखें वत्सल भाव जो
वे आतमा वत्सली सम्यग्दृष्टि हैं यह जानना ॥२३५॥
सद्ज्ञानरथ आरूढ़ हो जो भ्रमे मनरथ मार्ग में
वे प्रभावक जिनमार्ग के सद्दृष्टि उनको जानना ॥२३६॥
अन्वयार्थ : [जो कुणदि वच्छलत्तं] जो करता है वत्सल [तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्हि] तीनों मोक्षमार्ग के साधन (सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चारित्र) / साधक (आचार्य, उपाध्याय और साधु) के प्रति; [सो वच्छलभावजुदो] उस वात्सल्य भाव युक्त को [सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो] सम्यग्दृष्टि जानो ।
[विज्जारहमारूढो] विद्यारूपी रथ पर आरूढ़, [मणोरहपहेसु भमइ] मनरूपी रथ के पथ में भ्रमण करने वाला [जो चेदा] जो चेतयिता (ज्ञायक); [सो जिणणाणपहावी] उस जिनेन्द्र भगवान के ज्ञान की प्रभावना करनेवाले को [सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो] सम्यग्दृष्टि जानो ।
रागादिकतैं कर्मकौ, बन्ध जानि मुनिराय । ।
तजैं तिनहिं समभाव करि, नमूँ सदा तिन पाँय ॥

अन्वयार्थ : अब बन्ध प्रवेश करता है --

मिथ्या-ज्ञान श्रंगार-सहित प्रवेश कर रहा है

जह णाम को वि पुरिसो णेहब्भत्ते दु रेणुबहुलम्मि । (237)
ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहिं वायामं ॥252॥
छिंदति भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ । (238)
सच्चित्तचित्तणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥253॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं । (239)
णिच्छयदो चिंतेज्ज हु किंपच्चयगो दु रयबंधो ॥254॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो । (240)
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥255॥
एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु । (241)
रागादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रएण ॥256॥
ज्यों तेल मर्दन कर पुरुष रेणु बहुल स्थान में
व्यायाम करता शस्त्र से बहुविध बहुत उत्साह से ॥२३७॥
तरु ताड़ कदली बाँस आदिक वनस्पति छेदन करे
सचित्त और अचित्त द्रव्यों का बहुत भेदन करे ॥२३८॥
बहुविध बहुत उपकरण से उपघात करते पुरुष को
परमार्थ से चिन्तन करो रजबंध किस कारण हुआ ॥२३९॥
चिकनाई ही रजबंध का कारण कहा जिनराज ने
पर कायचेष्टादिक नहीं यह जान लो परमार्थ से ॥२४०॥
बहुभाँति चेष्टारत तथा रागादि को करते हुए
सब कर्मरज से लिप्त होते हैं जगत में अज्ञजन ॥२४१॥

अन्वयार्थ : [जह णाम को वि पुरिसो] जिसप्रकार कोई पुरुष [णेहब्भत्ते दु] तेल आदि चिकने पदार्थ लगाकर [य] और [रेणुबहुलम्मि] बहुत धूलवाले [ठाणम्मि] स्थान में [ठाइदूण] रहकर [करेदि सत्थेहिं वायामं] शस्त्रों के द्वारा व्यायाम करता है ।
[छिंदति भिंददि य तहा] तथा छेदता है, भेदता है [तालीतलकयलिवंसपिंडीओ] ताड़, तमाल, केला, बाँस, अशोक आदि वृक्षों को; [सच्चित्तचित्तणं] सचित्त व अचित्त [करेदि दव्वाणमुवघादं] द्रव्यों का उपघात (नाश) करता है ।
[णाणाविहेहिं करणेहिं] नानाप्रकार के साधनों द्वारा [उवघादं कुव्वंतस्स तस्स] उपघात करते हुए उसे [णिच्छयदो चिंतेज्ज हु] निश्चय से इस बात का विचार करो कि [किंपच्चयगो दु रयबंधो] किसकारण से धूलि का बंध होता है ?
[तम्हि णरे] उस पुरुष में [जो सो दु णेहभावो] जो तेलादि की चिकनाहट है; [तेण तस्स रयबंधो] उससे ही उसे धूलि का बंध होता है, [णिच्छयदो विण्णेयं] ऐसा निश्चय से जानना चाहिए [ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं] शारीरिक चेष्टाओं आदि से नहीं ।
[एवं मिच्छादिट्ठी] इसप्रकार मिथ्यादृष्टि [वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु] बहुतप्रकार की चेष्टाओं में वर्तता हुए [रागादी उवओगे कुव्वंतो] रागादिमय उपयोग से करता हुआ [लिप्पदि रएण] कर्मरूपी रज से लिप्त होता है, बँधता है ।

आगे वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव के कर्म-बंध नहीं होता है, ऐसा पांच गाथाओं से बतलाते हैं --

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वम्हि अवणिदे संते । (242)
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं ॥257॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ । (243)

सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥258॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं । (244)
णिच्छयदो चिंतेज्ज हु किंपच्चयगो ण रयबंधो ॥259॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो । (245)
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥260॥
एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु । (246)
अकरंतो उवओगे रागादी ण लिप्पदि रएण ॥261॥
ज्यों तेल मर्दन रहित जन रेणू बहुल स्थान में
व्यायाम करता शस्त्र से बहुविध बहुत उत्साह से ॥२४२॥
तरु ताल कदली बाँस आदिक वनस्पति छेदन करे
सचित्त और अचित्त द्रव्यों का बहुत भेदन करे ॥२४३॥
बहुविध बहुत उपकरण से उपघात करते पुरुष को
परमार्थ से चिन्तन करो रजबंध क्यों कर ना हुआ ? ॥२४४॥
चिकनाई ही रजबंध का कारण कहा जिनराज ने
पर कायचेष्टादिक नहीं यह जान लो परमार्थ से ॥२४५॥
बहुभाँति चेष्टारत तथा रागादि ना करते हुए
बस कर्मरज से लिप्त होते नहीं जग में विज्ञजन ॥२४६॥

अन्वयार्थ : [जह पुण सो चेव णरो] और जिसप्रकार वही पुरुष [णेहे सव्वम्हि अवणिदे संते] सभीप्रकार के तेल आदि स्निग्ध पदार्थों के दूर किये जाने पर [रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि] बहुत धूलिवाले स्थान में [सत्थेहिं वायामं] शस्त्रों के द्वारा व्यायाम करता है [तहा] तथा [तालीतलकयलिवंसपिंडीओ] ताल, तमाल, केला, बाँस और अशोक आदि वृक्षों को [छिंददि भिंददि य] छेदता है और भेदता है [सच्चित्तचित्तणं] सचित्त-अचित्त [करेदि दव्वाणमुवघादं] द्रव्यों का उपघात करता है ।

[णाणाविहेहिं करणेहिं] इसप्रकार नानाप्रकार के करणों द्वारा [उवघादं कुव्वंतस्स तस्स] उपघात करते हुए उसे [णिच्छयदो चिंतेज्ज हु] यह निश्चय से विचार करो कि [किंपच्चयगो ण रयबंधो] धूलि का बंध किसकारण से नहीं होता ।

[तम्हि णरे] उस पुरुष में [जो सो दु णेहभावो] जो वह तेल आदि चिकनाई [तेण तस्स रयबंधो] उससे उसके धूलि-बंध [णिच्छयदो विण्णेयं] निश्चय से जानना चाहिए [ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं] कायचेष्टादि कारणों से नहीं ।

[एवं] इसप्रकार [बहुविहेसु जोगेसु] बहुतप्रकार के योगों में [सम्मादिट्ठी वट्टंतो] वर्तता हुआ सम्यग्दृष्टि [अकरंतो उवओगे रागादी] उपयोग में रागादि को न करता हुआ [ण लिप्पदि रएण] कर्मरज से लिप्त नहीं होता ।

हिंस्य-हिंसकभाव रूप परिणमन अज्ञानी का लक्षण ज्ञानी का नहीं

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं । (247)
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्ते दु विवरीदो ॥262॥
आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं । (248)
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिं ॥263॥
आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं । (249)
आउं ण हरंति तुहं कह ते मरणं कदं तेहिं ।
जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं । (250)
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्ते दु विवरीदो ।
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू । (251)

आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं ।
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू । (252)
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं ॥264॥
मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन ॥२४७॥
निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं ॥२४८॥
निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं ॥२४९॥
मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावे अन्यजन
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन ॥२५०॥
सब आयु से जीवित रहें - यह बात जिनवर ने कही
जीवित रखोगे किसतरह जब आयु दे सकते नहीं ॥२५१॥
सब आयु से जीवित रहें यह बात जिनवर ने कही
कैसे बचावें वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं ॥२५२॥

अन्वयार्थ : [जो मण्णदि हिंसामि] जो यह मानता है कि मैं (पर जीवों को) मारता हूँ [य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं] और पर जीव मुझे मारते हैं; [सो मूढो अण्णाणी] वह मूढ़ है, अज्ञानी है और [णाणी एत्ते दु विवरीदो] ज्ञानी इससे विपरीत होता है ।

[आउक्खयेण मरणं जीवाणं] आयु (कर्म) के क्षय से जीवों का मरण होता है ऐसा [जिणवरेहिं पण्णत्तं] जिनवरदेव ने कहा है [आउं ण हरेसि तुमं] आयु-कर्म को तो तू नहीं हरता [कह ते मरणं कदं तेसिं] फिर तूने उनका मरण कैसे किया ?

[आउक्खयेण मरणं जीवाणं] आयु (कर्म) के क्षय से जीवों का मरण होता है ऐसा [जिणवरेहिं पण्णत्तं] जिनवरदेव ने कहा है [आउं ण हरंति तुहं] वे तेरी आयु को हरते नहीं [कह ते मरणं कदं तेहिं] फिर उन्होंने तेरा मरण कैसे किया ?

[जो मण्णदि जीवेमि य] जो मानता है कि मैं परजीवों को जिलाता हूँ [जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं] और परजीव मुझे जिलाते हैं; [सो मूढो अण्णाणी] वह मूढ़ है; अज्ञानी है [णाणी एत्ते दु विवरीदो] और ज्ञानी इससे विपरीत होता है ।

[आऊदयेण जीवदि जीवो] आयु (कर्म) के उदय से जीव जीता है [एवं भणंति सव्वण्हू] ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं [आउं च ण देसि तुमं] और तू आयु (कर्म) देता नहीं है [कहं तए जीविदं कदं तेसिं] फिर तूने उनका जीवन कैसे किया ?

[आऊदयेण जीवदि जीवो] आयु (कर्म) के उदय से जीव जीता है [एवं भणंति सव्वण्हू] ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं [आउं च ण दिंति तुहं] तुझे आयु (कर्म) कोई देते नहीं [कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं] फिर उन्होंने तेरा जीवन कैसे किया ?

सुख और दु:ख भी निश्चय से अपने ही कर्मों के उदय से होते हैं

जोअप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेत्ति । (253)
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्ते दु विवरीदो ॥265॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे । (254)
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कह कया ते ॥266॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे । (255)
कम्मं च ण दिंति तुहं कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं ॥267॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे । (256)
कम्मं च ण दिंति तुहं कह तं सुहिदो कदो तेहिं ॥268॥
मैं सुखी करता दु:खी करता हूँ जगत में अन्य को ।

यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो ?॥२५३॥
हैं सुखी होते दु:खी होते कर्म से सब जीव जब ।
तू कर्म दे सकता न जब सुख-दु:ख दे किस भाँति तब ॥२५४॥
हैं सुखी होते दु:खी होते कर्म से सब जीव जब ।
दुष्कर्म दे सकते न जब दु:ख-दर्द दें किस भाँति तब ॥२५५॥
हैं सुखी होते दु:खी होते कर्म से सब जीव जब ।
सत्कर्म दे सकते न जब सुख-शांति दें किस भाँति तब ॥२५६॥

अन्वयार्थ : [जो अप्पणा दु मण्णदि] जो मानता है कि मैं स्वयं [दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेत्ति] परजीवों को सुखी-दु:खी करता हूँ [सो मूढो अण्णाणी] वह मूढ़ है, अज्ञानी है और [णाणी एत्ते दु विवरीदो] ज्ञानी इससे विपरीत होता है ।

[जदि सव्वे] यदि सभी [कम्मोदएण] कर्म के उदय से [जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति] सुखी-दु:खी होते हैं [कम्मं च ण देसि तुमं] तू उन्हें कर्म तो देता नहीं है [दुक्खिदसुहिदा कह कया ते] तो तूने उन्हें सुखी-दु:खी कैसे किया ?

[जदि सव्वे] यदि सभी [कम्मोदएण] कर्म के उदय से [जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति] सुखी-दु:खी होते हैं [कम्मं च ण दिंति तुहं] वे तुझे कर्म तो देते नहीं हैं [कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं] तो फिर उन्होंने तुझे दु:खी कैसे किया ?

[जदि सव्वे] यदि सभी [कम्मोदएण] कर्म के उदय से [जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति] सुखी-दु:खी होते हैं [कम्मं च ण दिंति तुहं] वे तुझे कर्म तो देते नहीं हैं [कह तं सुहिदो कदो तेहिं] तो फिर उन्होंने तुझे सुखी कैसे किया ?

दूसरे को जिला, मार, सुखी कर सकना ऐसी मान्यता बहिरात्मपना

जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदएण सो सव्वो । (257)
तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥269॥
जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदएण चेव खलु । (258)
तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥270॥
जो मरे या जो दु:खी हों वे सब करम के उदय से
'मैं दु:खी करता-मारता' - यह बात क्यों मिथ्या न हो ? ॥२५७॥
जो ना मरे या दु:खी ना हो सब करम के उदय से
'ना दु:खी करता मारता' - यह बात क्यों मिथ्या न हो ॥२५८॥

अन्वयार्थ : [जो मरदि जो य दुहिदो] जो मरता है और जो दु:खी होता है, [जायदि कम्मोदएण सो सव्वो] वह सब कर्मोदय से होता है [तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि] इसलिए 'मैंने मारा, मैंने दु:खी किया' आदि ऐसा [ण हु मिच्छा] वास्तव में मिथ्या नहीं है ?

[जो ण मरदि ण य दुहिदो] जो मरता नहीं है और दु:खी नहीं होता है, [सो वि य कम्मोदएण चेव खलु] वह सब भी कर्मोदयानुसार ही होता है; [तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि] इसलिए 'मैंने नहीं मारा, मैंने दु:खी नहीं किया' आदि ऐसा [ण हु मिच्छा] वास्तव में मिथ्या नहीं है ?

पूर्व के दो सूत्र में कहा हुआ मिथ्याज्ञानरूपी भाव मिथ्यादृष्टि के बंध का कारण होता है

एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेत्ति । (259)
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं ॥271॥
दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते । (260)
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥272॥
मारिमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते । (261)
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥273॥

मैं सुखी करता दु:खी करता हूँ जगत में अन्य को
यह मान्यता ही मूढ़मति शुभ-अशुभ का बंधन करे ॥२५९॥
'मैं सुखी करता दु:खी करता' यही अध्यवसान सब
पुण्य एवं पाप के बंधक कहे हैं सूत्र में ॥२६०॥
'मैं मारता मैं बचाता हूँ' यही अध्यवसान सब
पाप एवं पुण्य के बंधक कहे हैं सूत्र में ॥२६१॥
अन्वयार्थ : [एसा दु जा मदी दे] यह जो तेरी बुद्धि है कि [दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेत्ति] जीवों को सुखी-दु:खी करता हूँ [एसा दे मूढमदी] तेरी यही मूढ़बुद्धि [सुहासुहं बंधदे कम्मं] शुभाशुभ-कर्म को बाँधती है ।
[दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि] मैं जीवों को दुखी-सुखी करता हूँ - [जं एवमज्झवसिदं ते] ऐसा जो तेरा अध्यवसान [तं पावबंधगं वा] वही पाप-बंध [पुण्णस्स व बंधगं] अथवा पुण्य का बंधक [होदि] होता है ।
[मारिमि जीवावेमि य सत्ते] मैं जीवों को मारता हूँ और जिलाता हूँ - [जं एवमज्झवसिदं ते] ऐसा जो तेरा अध्यवसान [तं पावबंधगं वा] वही पाप-बंध [पुण्णस्स व बंधगं] अथवा पुण्य का बंधक [होदि] होता है ।

अध्यवसान से ही बंध प्राणियों को मारने अथवा न मारने से नहीं

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ । (262)
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥274॥
मारो न मारो जीव को हो बंध अध्यवसान से
यह बंध का संक्षेप है तुम जान लो परमार्थ से ॥२६२॥
अन्वयार्थ : [अज्झवसिदेण बंधो] अध्यवसान से (कर्म) बंध होता है [सत्ते मारेउ मा व मारेउ] जीवों को मारो अथवा न मारो [जीवाणं णिच्छयणयस्स] निश्चय से जीवों के [एसो बंधसमासो] यह बंध का संक्षेप है ।

अध्यवसाय ही पाप-पुण्य के बन्ध का कारण हैं, ऐसा दिखाते हैं

एवमलिए अदत्ते अबंभचेरे परिग्गहे चेव । (263)
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पावं ॥275॥
तह वि य सच्चे दत्ते बंभे अपरिग्गहत्तणे चेव । (264)
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पुण्णं ॥276॥
इस ही तरह चोरी असत्य कुशील एवं ग्रंथ में
जो हुए अध्यवसान हों वे पाप का बंधन करें ॥२६३॥
इस ही तरह अचौर्य सत्य सुशील और अग्रंथ में
जो हुए अध्यवसान हों वे पुण्य का बंधन करें ॥२६४॥
अन्वयार्थ : [एवमलिए] इसप्रकार असत्य, [अदत्ते] चोरी, [अबंभचेरे] अब्रह्मचर्य [परिग्गहे चेव] और परिग्रह में भी [जं] यदि [कीरदि अज्झवसाणं] अध्यवसान किया जाता है [तेण दु बज्झदे पावं] उनसे ही पाप का बंध होता है [तह वि य] और उसी प्रकार [सच्चे] सत्य, [दत्ते] अचौर्य, [बंभे] ब्रह्मचर्य [अपरिग्गहत्तणे चेव] और अपरिग्रह में भी [जं] यदि [कीरदि अज्झवसाणं] अध्यवसान किया जाता है [तेण दु बज्झदे पुण्णं] उनसे ही पुण्य का बंध होता है ।

रागादिक-रूप परिणाम बंध का कारण होते हैं, बाह्य वस्तु नहीं

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं । (265)
ण य वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि ॥277॥

ये भाव अध्यवसान होते वस्तु के अवलम्ब से
पर वस्तु से ना बंध हो हो बंध अध्यवसान से ॥२६५॥
अन्वयार्थ : [पुण] और [जं अज्झवसाणं] जो अध्यवसान [वत्थुं पडुच्च] वस्तु के अवलम्बन-पूर्वक [तु होदि जीवाणं] ही जीवों के होते हैं [ण य वत्थुदो दु बंधो] तथापि वस्तु से बंध नहीं होता, [अज्झवसाणेण बंधोत्थि] अध्यवसान से ही बंध होता है ।

'मैं जीवों को सुखी-दुखी, बांधता-मुक्त करता हूँ', यह मानना मूढ़ता है

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि । (266)
जा एसा मूढमदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ॥278॥
अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि । (267)
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करेसि तुमं ॥279॥
मैं सुखी करता दु:खी करता बाँधता या छोड़ता
यह मान्यता हे मूढ़मति मिथ्या निरर्थक जानना ॥२६६॥
जिय बँधे अध्यवसान से शिवपथ-गमन से छूटते
गहराई से सोचो जरा पर में तुम्हारा क्या चले ? ॥२६७॥
अन्वयार्थ : [दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि] मैं जीवों को दु:खी-सुखी करता हूँ, [बंधेमि तह विमोचेमि] बँधाता हूँ, छुड़ाता हूँ - [जा एसा मूढमदी] ऐसी जो मूढ़मति [णिरत्थया सा हु दे मिच्छा] वह निरर्थक होने से वास्तव में मिथ्या है ।
[जदि हि] यदि वास्तव में [अज्झवसाणणिमित्तं] अध्यवसान के निमित्त से [जीवा बज्झंति कम्मणा] जीव कर्म से बंधते हैं [मोक्खमग्गे ठिदा य] और मोक्षमार्ग में स्थित जीव [मुच्चंति] मुक्ति को प्राप्त करते हैं [ता किं करेसि तुमं] तो तू क्या करता है ?

इस प्रकार जो जीव दुखी होते है वे अपने पाप-कर्म के उदय से होते है, तुम्हारे विचारानुसार नहीं यह बतलाते हैं --

कायेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि । ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥280॥
वाचाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि । ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥281॥
मणसाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि । ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥282॥
सच्छेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि । ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥283॥
कायेण च वाया वा मणेण सुहिदे करेमि सत्ते ति । ।
एवं पि हवदि मिच्छा सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ॥284॥
यदि जीव कर्मों से दु:खी 'मैं दु:खी करता काय से' ।
यह मान्यता अज्ञान है जिनमार्ग के आधार से ॥२८०॥
यदि जीव कर्मों से दु:खी 'मैं दु:खी करता वचन से' ।
यह मान्यता अज्ञान है जिनमार्ग के आधार से ॥२८१॥
यदि जीव कर्मों से दु:खी 'मैं दु:खी करता हृदय से' ।
यह मान्यता अज्ञान है जिनमार्ग के आधार से ॥२८२॥
यदि जीव कर्मों से दु:खी 'मैं दु:खी करता शस्त्र से' ।

यह मान्यता अज्ञान है जिनमार्ग के आधार से ॥२८३॥
यदि जीव कर्मों से सुखी तो मन-वचन से काय से ।
'मैं सुखी करता अन्य को' यह मान्यता अज्ञान है ॥२८४॥

अन्वयार्थ : [दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता] यदि जीव अपने कर्मों से दु:खी होते हैं तो [कायेण दुक्खवेमिय सत्ते] 'मैं जीवों को काय से दु:खी करता हूँ' [एवं तु जं मदिं कुणसि] इसप्रकार की तेरी मति (विकल्पमयबुद्धि-मान्यता) [सव्वावि एस मिच्छा] पूर्णत: मिथ्या है ।
[दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता] यदि जीव अपने कर्मों से दु:खी होते हैं तो [वाचाए दुक्खवेमिय सत्ते] 'मैं जीवों को वाणी से दु:खी करता हूँ' [एवं तु जं मदिं कुणसि] इसप्रकार की तेरी मति [सव्वावि एस मिच्छा] पूर्णत: मिथ्या है ।
[दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता] यदि जीव अपने कर्मों से दु:खी होते हैं तो [मणसाए दुक्खवेमिय सत्ते] 'मैं जीवों को मन से दु:खी करता हूँ' [एवं तु जं मदिं कुणसि] इसप्रकार की तेरी मति [सव्वावि एस मिच्छा] पूर्णत: मिथ्या है ।
[दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता] यदि जीव अपने कर्मों से दु:खी होते हैं तो [सच्छेण दुक्खवेमिय सत्ते] 'मैं जीवों को शस्त्रों (हथियारों) से दु:खी करता हूँ' [एवं तु जं मदिं कुणसि] इसप्रकार की तेरी मति [सव्वावि एस मिच्छा] पूर्णत: मिथ्या है ।
[सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता] यदि जीव अपने कर्मों से सुखी होते हैं तो [कायेण च वाया वा मणेण] मन से, वचन से या काय से [सुहिदे करेमि सत्ते ति] मैं जीवों को सुखी करता हूँ - [एवं पि हवदि मिच्छा] ऐसी बुद्धि भी मिथ्या है ।

अध्यवसान से मोहित ही पर-द्रव्य से एकत्व करता है

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए । (268)
देवमणुए य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ॥285॥
धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च । (269)
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥286॥
यह जीव अध्यवसान से तिर्यंच नारक देव नर
अर पुण्य एवं पाप सब पर्यायमय निज को करे ॥२६८॥
वह जीव और अजीव एवं धर्म और अधर्ममय
अर लोक और अलोक इन सबमय स्वयं निज को करे ॥२६९॥

अन्वयार्थ : [जीवो अज्झवसाणेण] जीव अध्यवसान द्वारा [तिरियणेरइए] तिर्यंच, नारक, [देवमणुए य] देव और मनुष्य - इन [सव्वे] सब (पर्यायों) और [णेयविहं] अनेकप्रकार के [पुण्णं पावं च] पुण्य और पाप [सव्वे करेदि] सब-रूप (स्वयं को) करता है ।
[अप्पाणं अज्झवसाणेण] आत्मा अध्यवसान से [धम्माधम्मं च तहा] धर्म और अधर्म, [जीवाजीवे] जीव-अजीव [अलोगलोगं च] और लोक-अलोक [सव्वे करेदि जीवो] सबरूप (स्वयं को) करता है ।

तपोधन मोह भाव रहित

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि । (270)
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥287॥
ये और इनसे अन्य अध्यवसान जिनके हैं नहीं
वे मुनीजन शुभ-अशुभ कर्मों से न कबहूँ लिप्त हों ॥२७०॥

अन्वयार्थ : [एदाणि] ऐसे [एवमादीणि] तथा इसप्रकार के अन्य और भी [अज्झवसाणाणि] अध्यवसानभाव [णत्थि जेसिं] जिनके नहीं हैं [ते मुणी] वे मुनि [असुहेण सुहेण व कम्मेण] अशुभ अथवा शुभ कर्मों से [ण लिप्पंति] लिप्त नहीं होते ।

बाह्य वस्तुओं में संकल्प विकल्प कर्म का कारण

जा संकप्पवियप्पो ता कम्मं कुणदि असुहसुहजणयं । ।

अप्पसरूवा रिद्धी जाव ण हियए परिफ्फुरई ॥288॥
इस आतमा में जबतलक संकल्प और विकल्प हैं ।
तबतलक अनुभूति ना तबतक शुभाशुभ कर्म हों ॥२८८॥
अन्वयार्थ : [जा संकप्पवियप्पो] जबतक संकल्प-विकल्प हैं, [ता] तबतक [असुहसुहजणयं] शुभ-अशुभ [कम्मं कुणदि] कर्म करता है [अप्पसरूवा रिद्धी] आत्मस्वभावमय ऋद्धि (स्वानुभूति) [जाव ण हियए परिफ्फुरई] तब-तक हृदय में प्रगट नहीं होती ।

अध्यवसान के पर्यायवाची

बुद्धी ववसाओ वि य अज्झवसाणं मदी य विण्णाणं । (271)
एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥289॥
व्यवसाय बुद्धी मती अध्यवसान अर विज्ञान भी
एकार्थवाचक हैं सभी ये भाव चित परिणाम भी ॥२७१॥
अन्वयार्थ : [बुद्धी] बुद्धि, [ववसाओ वि य] और व्यवसाय भी, [अज्झवसाणं] अध्यवसान, [मदी य] मति और [विण्णाणं] विज्ञान, [चित्तं] चित्त, [भावो य परिणामो] भाव और परिणाम - [एक्कट्ठमेव सव्वं] ये सब एकार्थवाची (पर्यायवाची) हैं ।

निश्चयनय के द्वारा व्यवहार विकल्पों का निषेध

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणएण । (272)
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाण ॥290॥
इस तरह ही परमार्थ से कर नास्ति इस व्यवहार की
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन प्राप्ती करें निर्वाण की ॥२७२॥
अन्वयार्थ : [एवं ववहारणओ] इसप्रकार व्यवहारनय [णिच्छयणएण] निश्चयनय के द्वारा [पडिसिद्धो] निषिद्ध [जाण] जानो [पुण] तथा [णिच्छयणयासिदा] निश्चयनय के आश्रित [मुणिणो] मुनिराज [पावंति णिव्वाण] निर्वाण को प्राप्त होते हैं ।

अभव्य जीव के अपने मिथ्या अभिप्राय के कारण सिद्धि नहीं

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं । (273)
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥291॥
मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज । (274)
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥292॥
सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि । (275)
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥293॥
व्रत-समिति-गुप्ती-शील-तप आदिक सभी जिनवरकथित
करते हुए भी अभव्यजन अज्ञानि मिथ्यादृष्टि हैं ॥२७३॥
मोक्ष के श्रद्धान बिन सब शास्त्र पढ़कर भी अभवि
को पाठ गुण करता नहीं है ज्ञान के श्रद्धान बिन ॥२७४॥
अभव्यजन श्रद्धा करें रुचि धरें अर रच-पच रहें
जो धर्म भोग निमित्त हैं न कर्मक्षय में निमित्त जो ॥२७५॥
अन्वयार्थ : [जिणवरेहि पण्णत्तं] जिनवरदेव के द्वारा कहे गये [वदसमिदीगुत्तीओ] व्रत, समिति, गुप्ति, [सीलतव] शील और तप [कुव्वंतो वि अभव्वो] करते हुए भी अभव्यजीव [अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु] अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि है ।
[मोक्खं असद्दहंतो] मोक्ष की श्रद्धा से रहित [अभवियसत्तो दु] वह अभव्यजीव [जो अधीएज्ज] यद्यपि शास्त्रों को पढ़ता है; तथापि

[असद्दहंतस्स णाणं तु] ज्ञान की श्रद्धा से रहित उसको [पाठो ण करेदि गुणं] शास्त्र-पठन गुण (लाभ) नहीं करता ।
[सद्दहदि य] श्रद्धा करता है, [पत्तेदि य] प्रतीति करता है, [रोचेदि य] रुचि करता है [तह पुणो य फासेदि] और फिर वह स्पर्श भी करता है [धम्मं भोगणिमित्तं] धर्म को -- भोग के कारण [ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं] कर्मक्षय का कारण नहीं ।

व्यवहार-नय व निश्चय-नय का स्वरूप

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं । (276)
छज्जीवणिकं च तहा भणदि चरित्तं तु व्यवहारो ॥294॥
आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च । (277)
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥295॥
जीवादि का श्रद्धान दर्शन शास्त्र-अध्ययन ज्ञान है
चारित्र है षट्काय रक्षा - यह कथन व्यवहार है ॥२७६॥
निज आतमा ही ज्ञान है दर्शन चरित भी आतमा
अर योग संवर और प्रत्याख्यान भी है आतमा ॥२७७॥
अन्वयार्थ : [आयारादी णाणं] आचारांगादि शास्त्र ज्ञान है, [जीवादी दंसणं च विण्णेयं] जीवादि तत्त्व दर्शन जानो [च] और [छज्जीवणिकं] छह जीवनिकाय [चरित्तं] चारित्र है - [तहा भणदि तु व्यवहारो] ऐसा व्यवहारनय कहता है ।
[आदा खु मज्झ णाणं] निश्चय से मेरा आत्मा ही ज्ञान, [आदा मे दंसणं चरित्तं च] मेरा आत्मा ही दर्शन, चारित्र है, [आदा पच्चक्खाणं] आत्मा प्रत्याख्यान [आदा मे संवरो जोगो] मेरा आत्मा ही संवर व योग है ।

ज्ञानी के आहारकृत बन्ध नहीं

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा । (286)
कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा हु जे णिच्चं ॥296॥
आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा । (287)
कहमणुमण्णदि अण्णेण कीरमाणा परस्स गुणा ॥297॥
अध:कर्मक आदि जो पुद्गल दरब के दोष हैं
पर-द्रव्य के गुणरूप उनको ज्ञानिजन कैसे करें ? ॥२८६॥
उद्देशिक अध:कर्म जो पुद्गल दरबमय अचेतन
कहे जाते वे सदा मेरे किये किस भाँति हों ? ॥२८७॥
अन्वयार्थ : [आधाकम्मादीया] आधाकर्मादिक [पुग्गलदव्वस्स] पुद्गल-द्रव्य के [जे इमे] जो यह [दोसा] दोष [कह ते] उसे कैसे [कुव्वदि] कर सकता है [णाणी] ज्ञानी [जे] जो कि [णिच्चं] नित्य [परदव्वगुणा हु] पर-द्रव्य के ही गुण हैं ॥२९६॥
[आधाकम्मादीया] आधाकर्मादिक [पुग्गलदव्वस्स] पुद्गल-द्रव्य के [जे इमे] जो इन [दोसा] दोषों की [कहमणुमण्णदि] अनुमोदना कैसे कर सकता है जो कि [अण्णेण कीरमाणा] अन्य द्वारा किये हुए [परस्स गुणा] पर-द्रव्य के गुण हैं ।
आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम होदि कदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥298॥
आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम कारविदं जं णिच्चमचेणं वुत्तं ॥299॥
उद्देशिक अध:कर्म जो पुद्गल दरबमय अचेतन
कहे जाते वे सदा मेरे किये किस भाँति हों ? ॥२९८॥
उद्देशिक अध:कर्म जो पुद्गलदरबमय अचेतन

कहे जाते वे सदा मेरे कराये किसतरह ? ॥२९९॥

अन्वयार्थ : पर के उद्देश्य से किया हुआ यह आधाकर्म पुद्गल-मयी द्रव्य है तथा नित्य ही अचेतन है ऐसा कहा गया है सो यह मेरी की हुई कैसे हो सकती है अथवा मेरी कराई हुई कैसे हो सकती है ।

रागादि विकारी भाव कैसे बनते है ?

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागामादीहिं । (278)
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥300॥
एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागामादीहिं । (279)
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥301॥
ज्यों लालिमामय स्वयं परिणत नहीं होता फटिकमणि
पर लालिमायुत द्रव्य के संयोग से हो लाल वह ॥२७८॥
त्यों ज्ञानिजन रागादिमय परिणत न होते स्वयं ही
रागादि के ही उदय से वे किये जाते रागमय ॥२७९॥

अन्वयार्थ : [जह फलिहमणी] जिसप्रकार स्फटिकमणि [सुद्धो] शुद्ध होने से [रागामादीहिं] रागादिरूप (लालिमारूप) [ण सयं परिणमदि] अपने आप नहीं परिणमता [अण्णेहिं] अन्य [रत्तादीहिं दव्वेहिं] द्रव्यों की लालिमादि द्वारा [दु सो] ही वह [रंगिज्जदि] रंगा जाता है ।

[एवं णाणी सुद्धो] उसीप्रकार ज्ञानी (आत्मा) शुद्ध होने से [रागामादीहिं] रागादिरूप [ण सयं परिणमदि] अपने आप नहीं परिणमता [अण्णेहिं रागादीहिं दोसेहिं] अन्य के रागादि दोषों से [दु सो] ही वह [राइज्जदि] रागादि रूप किया जाता है ।

ज्ञानी जीव आस्रव का कर्त्ता नहीं होता

ण य रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा । (280)
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं ॥302॥
ना स्वयं करता मोह एवं राग-द्वेष-कषाय को
इसलिए ज्ञानी जीव कर्ता नहीं है रागादि का ॥२८०॥

अन्वयार्थ : [च] और [णाणी] ज्ञानी [रागदोसमोहं] राग-द्वेष-मोह [कसायभावं वा] अथवा कषायभाव [सयमप्पणो] स्वयं से अपने में नहीं करता [सो ते] इसकारण वह [ण कारगो तेसिं भावाणं] उन भावों का कारक (कर्ता) नहीं है ।

ज्ञानी के कर्म के उदय से राग द्वेष

रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा । (281)
तेहिं दु परिणमंतो रागादि बंधदि पुणो वि ॥303॥
रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा । (282)
तेहिं दु परिणमंतो रागादी बंधदे चेदा ॥304॥
राग-द्वेष-कषाय कर्मों के उदय में भाव जो
उनरूप परिणत जीव फिर रागादि का बंधन करे ॥२८१॥
राग-द्वेष-कषाय कर्मों के उदय में भाव जो
उनरूप परिणत आतमा रागादि का बंधन करे ॥२८२॥

अन्वयार्थ : [रागम्हि य दोसम्हि य] राग और द्वेष और [कसायकम्मेसु चेव जे भावा] कषाय कर्मों के (उदय) होने पर जो भाव, [तेहिं दु परिणमंतो] उनरूप परिणमता हुआ [रागादि बंधदि पुणो वि] रागादि द्वारा बंधता है ।

[रागम्हि य दोसम्हि य] राग और द्वेष और [कसायकम्मेसु चेव जे भावा] कषाय कर्मों के (उदय) होने पर जो भाव, [तेहिं दु परिणमंतो] उनरूप परिणमता हुआ [रागादी बंधदे चेदा] आत्मा रागादि को बाँधता है ।

ज्ञानी रागादि का अकर्ता कैसे ?

अप्पडिकमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं । (283)
एदेणुवदेसेण य अकारगो वण्णिदो चेदा ॥305॥
अप्पडिकमणं दुविहं दव्वे भावे अपच्चखाणं पि । (284)
एदेणुवदेसेण य अकारगो वण्णिदो चेदा ॥306॥
जावं अप्पडिकमणं अपच्चखाणं च दव्वभावाणं । (285)
कुव्वदि आदा तावं कत्ता सो होदि णादव्वो ॥307॥
है द्विविध अप्रतिक्रमण एवं द्विविध है अत्याग भी
इसलिए जिनदेव ने अकारक कहा है आतमा ॥२८३॥
अत्याग अप्रतिक्रमण दोनों द्विविध हैं द्रवभाव से
इसलिए जिनदेव ने अकारक कहा है आतमा ॥२८४॥
द्रवभाव से अत्याग अप्रतिक्रमण होवें जबतलक
तबतलक यह आतमा कर्ता रहे - यह जानना ॥२८५॥

अन्वयार्थ : [अप्पडिकमणं दुविहं] अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है [अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं] इसीप्रकार अप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का जानो [एदेणुवदेसेण य] इस उपदेश से [अकारगो वण्णिदो चेदा] आत्मा अकारक कहा गया है ।

[अप्पडिकमणं दुविहं] अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है - [दव्वे भावे] द्रव्य और भाव, [अपच्चखाणं पि] अप्रत्याख्यान भी (दो प्रकार का जानो) [एदेणुवदेसेण य] इस उपदेश से [अकारगो वण्णिदो चेदा] आत्मा अकारक कहा गया है ।

[जावं अप्पडिकमणं] जबतक अप्रतिक्रमण [अपच्चखाणं च दव्वभावाणं] और अप्रत्याख्यान द्रव्य और भाव का [कुव्वदि आदा] आत्मा करता है [तावं कत्ता सो होदि णादव्वो] तबतक वह कर्ता होता है, ऐसा जानो ।

विशिष्ट भेद-ज्ञान के बल से बन्ध और आत्मा को पृथक् करना मोक्ष

जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्हि चिरकालपडिबद्धो । (288)
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणदे तस्स ॥308॥
जइ णवि कुणदि च्छेदं ण मुच्चदे तेण बंधणवसो सं । (289)
कालेण उ बहुगेण वि ण सो णरो पावदि विमोक्खं ॥309॥
इय कम्मबंधणाणं पदेसठिइपयडिमेवमणुभागं । (290)
जाणंतो वि ण मुच्चदि मुच्चदि सो चेव जदि सुद्धो ॥310॥
कोई पुरुष चिरकाल से आबद्ध होकर बंध के
तीव्र-मन्दस्वभाव एवं काल को हो जानता ॥२८८॥
किन्तु यदि वह बंध का छेदन न कर छूटे नहीं
तो वह पुरुष चिरकाल तक निज मुक्ति को पाता नहीं ॥२८९॥
इस ही तरह प्रकृति प्रदेश स्थिति अर अनुभाग को
जानकर भी नहीं छूटे शुद्ध हो तब छूटता ॥२९०॥

अन्वयार्थ : [जह णाम को वि पुरिसो] जिसप्रकार कोई पुरुष [बंधणयम्हि] बंधन में [चिरकालपडिबद्धो] बहुत काल से बँधा हुआ [तस्स] उस बंधन के [तिव्वं मंदसहावं] तीव्र-मन्दस्वभाव को [कालं च वियाणदे] और उसकी कालावधि को जानता हुआ [जइ णवि कुणदि] यदि

[णवि कुणदि च्छेदं] उस बंधन को काटता नहीं है [ण मुच्चदे तेण] तो वह उससे मुक्त नहीं होता [बंधणवसो सं] तथा बंधन में रहता हुआ [कालेण उ बहुगेण] बहुत काल में [वि सो णरो] भी वह पुरुष [ण पावदि विमोक्खं] मुक्ति को प्राप्त नहीं करता । [इय कम्मबंधणाणं] उसीप्रकार (यह आत्मा) कर्म-बंधनों के [पदेसठिइपयडिमेवमणुभागं] प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग को [जाणंतो वि ण मुच्चदि] जानता हुआ भी (कर्मबंधन से) नहीं छूटता [मुच्चदि सो चेव जदि सुद्धो] किन्तु यदि (रागादि को दूर कर) वह स्वयं शुद्ध होता है तो कर्म-बंधन से छूट जाता है ।

इसी को और स्पष्ट करते हैं

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं । (291)
तह बंधे चिंतंतो जीवो वि ण पावदि विमोक्खं ॥311॥
जह बंधे छेत्तूणय बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं । (292)
तह बंधे छेत्तूणय जीवो संपावदि विमोक्खं ॥312॥
जह बंधे भित्तूणय बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं ।
तह बंधे भित्तूणय जीवो संपावदि विमोक्खं ॥313॥
जह बंधे मुत्तूणय बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं ।
तह बंधे मुत्तूणय जीवो संपावदि विमोक्खं ॥314॥
बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च । (293)
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि ॥315॥
चिन्तवन से बंध के ज्यों बँधे जन ना मुक्त हों
त्यों चिन्तवन से बंध के सब बँधे जीव न मुक्त हों ॥२९१॥
छेदकर सब बंधनों को बद्धजन ज्यों मुक्त हों
त्यों छेदकर सब बंधनों को बद्धजिय सब मुक्त हों ॥२९२॥
जो जानकर निजभाव निज में और बंधस्वभाव को
विरक्त हों जो बंध से वे जीव कर्मविमुक्त हों ॥२९३॥

अन्वयार्थ : [जह] जिसप्रकार [बंधे चिंतंतो] बंधन का विचार-मात्र करने वाला [बंधणबद्धो] बंधन से बद्ध (पुरुष) को [ण पावदि विमोक्खं] (बंधन से) मुक्ति नहीं पाता [तह] उसीप्रकार [बंधे चिंतंतो] बंधनों का विचार-मात्र करनेवाला [जीवो वि] जीव भी [ण पावदि विमोक्खं] मुक्ति नहीं पाता ।

[जह] जिसप्रकार [बंधणबद्धो] बंधनबद्ध (पुरुष) [बंधे छेत्तूणय दु] बंधनों को छेदकर ही [पावदि विमोक्खं] मुक्ति पाता है [तह बंधे छेत्तूणय] उसीप्रकार बंधनों को छेदकर ही [जीवो संपावदि विमोक्खं] जीव मुक्ति को पाता है ।

[जह] जिसप्रकार [बंधणबद्धो] बंधनबद्ध (पुरुष) [बंधे मुत्तूणय दु] बंधनों को काटकर ही [पावदि विमोक्खं] मुक्ति पाता है [तह बंधे मुत्तूणय] उसीप्रकार बंधनों को काटकर ही [जीवो संपावदि विमोक्खं] जीव मुक्ति को पाता है ।

[बंधाणं च सहावं वियाणिदुं] बंध के स्वभाव को और [अप्पणो सहावं च] आत्मा के स्वभाव को जानकर [बंधेसु जो विरज्जदि] बंध के प्रति जो विरक्त होता है [सो कम्मविमोक्खणं कुणदि] उसे कर्म मुक्त करता है ।

आत्मा और बन्ध को भिन्न कैसे किया जाए ?

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं । (294)
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥316॥
जीव एवं बंध निज-निज लक्षणों से भिन्न हों
दोनों पृथक् हो जायें प्रज्ञाछैनि से जब छिन्न हों ॥२९४॥

अन्वयार्थ : [जीवो बंधो य तहा] जीव तथा बंध [णियएहिं] नियत [सलक्खणेहिं] स्वलक्षणों से [छिज्जंति] छेदे जाते हैं । [पण्णाछेदणएण] प्रज्ञारूपी छैनी से [दु छिण्णा] छेदे जाने पर [णाणत्तमावण्णा] वे नानात्व (भिन्नपने) को प्राप्त होते हैं ।

आत्मा और बन्ध के प्रथक्-करण कब होता है ?

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं । (295)
बंधो छेददव्वो सुद्धा अप्पा य घेत्तव्वो ॥317॥
कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा । (296)
जह पण्णाइ विभत्ते तह पण्णाएव घेत्तव्वो ॥318॥
पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो । (297)
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णायव्वा ॥319॥
जीव एवं बंध निज-निज लक्षणों से भिन्न हों
बंध को है छेदना अर ग्रहण करना आतमा ॥२९५॥
जिस भाँति प्रज्ञाछैनी से पर से विभक्त किया इसे
उस भाँति प्रज्ञाछैनी से ही अरे ग्रहण करो इसे ॥२९६॥
इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो चेतता
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥२९७॥

अन्वयार्थ : [जीवो बंधो य तहा] जीव तथा बंध [णियएहिं] नियत [सलक्खणेहिं] स्वलक्षणों से [छिज्जंति] छेदे जाते हैं । [बंधो छेददव्वो] बंध को छेदो [च] और [सुद्धा अप्पा] शुद्ध आत्मा को [घेत्तव्वो] ग्रहण करो ।

[कह सो घिप्पदि अप्पा] वह आत्मा को कैसे ग्रहण करें ? [पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा] उस आत्मा को प्रज्ञा से ही ग्रहण करो । [जह पण्णाइ विभत्ते] जिस प्रज्ञा से भिन्न किया [तह पण्णाएव घेत्तव्वो] उसी प्रज्ञा से ही ग्रहण भी करो ।

[पण्णाए घित्तव्वो] प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण करना चाहिए कि [जो चेदा] जो चेतनेवाला है, [सो अहं तु णिच्छयदो] वह निश्चय से मैं ही हूँ । [अवसेसा जे भावा] शेष जो सभी भाव हैं [ते मज्झ परे त्ति णायव्वा] वे मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानो ।

भेद-भावना -- मैं बस जानने देखने देखने वाला

पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो । (298)
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥320॥
पण्णाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो । (299)
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥321॥
पण्णाए घित्तव्वो जो उवलद्धो सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥322॥
इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो देखता ।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥२९८॥
इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो जानता ।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥२९९॥

अन्वयार्थ : [पण्णाए घित्तव्वो] प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण करो कि [जो दट्ठा] जो देखनेवाला है, [सो अहं तु णिच्छयदो] वह निश्चय से मैं ही हूँ; [अवसेसा जे भावा] शेष जो सभी भाव हैं [ते मज्झ परे त्ति णायव्वा] वे मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानो ।

[पण्णाए घित्तव्वो] प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण करो कि [जो णादा] जो जाननेवाला है, [सो अहं तु णिच्छयदो] वह निश्चय से मैं ही हूँ; [अवसेसा जे भावा] शेष जो सभी भाव हैं [ते मज्झ परे त्ति णायव्वा] वे मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानो ।

[पण्णाए घित्तव्वो] प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण करो कि [जो उवलद्धो] जो अनुभव में आनेवाला है, [सो अहं तु णिच्छयदो] वह निश्चय से मैं ही हूँ; [अवसेसा जे भावा] शेष जो सभी भाव हैं [ते मज्झ परे त्ति णायव्वा] वे मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानो ।

शुद्धात्मा मात्र ज्ञाता, पर भाव मेरे नहीं

को णाम भणिज्ज बुहो णादुं सव्वे पराइए भावे । (300)
मज्झमिणंति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥323॥
निज आतमा को शुद्ध अर पररूप पर को जानता ।
है कौन बुध जो जगत में परद्रव्य को अपना कहे ॥३००॥

अन्वयार्थ : [जाणंतो अप्पयं सुद्धं] अपने को शुद्ध आत्मा जाननेवाला [य] और [णादुं सव्वे पराइए भावे] सर्व परभावों को जाननेवाला [को णाम भणिज्ज बुहो वयणं] कौन ज्ञानी वचनों से यह कहेगा कि [मज्झमिणंति] ये (परपदार्थ) मेरे हैं ?

पर भावों को अपना मानने से बन्ध और वीतरागता से मुक्ति

थेयादी अवराहे जो कुव्वदि सो उ संकिदो भमइ । (301)
मा बज्झेज्जं केण वि चोरी त्ति जणम्हि वियरंतो ॥324॥
जो ण कुणदि अवराह सो णिस्संको दु जणवदि भमदि । (302)
ण वि तस्स बज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ ॥325॥
एवम्हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा । (303)
जइ पुण णिरावराहो णिस्संकोहं ण बज्झामि ॥326॥
अपराध चौर्यादिक करें जो पुरुष वे शंकित रहें ।
कि चोर है यह जानकर कोई मुझे ना बाँध ले ॥३०१॥
अपराध जो करता नहीं नि:शंक जनपद में रहे ।
बँध जाऊँगा ऐसी कभी चिन्ता न उसके चित रहे ॥३०२॥
अपराधि जिय 'मैं बँधूँगा' इसतरह नित शंकित रहे ।
पर निरपराधी आतमा भयरहित है नि:शंक है ॥३०३॥

अन्वयार्थ : [थेयादी अवराहे] चोरी आदि अपराध [जो कुव्वदि] जो करता है, [सो उ संकिदो भमइ] वह शंकित घूमता है [मा बज्झेज्जं केण वि चोरी त्ति] 'चोर समझकर कोई मुझे पकड़ न ले' इसप्रकार [जणम्हि वियरंतो] लोक में घूमता है ।
[जो ण कुणदि अवराह] जो अपराध नहीं करता, [सो णिस्संको दु जणवदि भमदि] वह लोक में नि:शंक घूमता है; क्योंकि [तस्स] उसे [बज्झिदुं] 'बन्धुंगा' [जे चिंता] ऐसी चिन्ता [कयाइ] कभी [ण वि उप्पज्जदि] भी उत्पन्न नहीं होती ।
[एवम्हि] इसीप्रकार [सावराहो] अपराधी (आत्मा) [अहं तु बज्झामि] 'मैं बँधूँगा' - इसप्रकार शंकित होता है [जइ पुण] और यदि वह [णिरावराहो] निरपराध हो तो [णिस्संकोहं ण बज्झामि] 'मैं नहीं बँधूँगा' - इसप्रकार नि:शंक होता है ।

अपराध शब्द का अर्थ

संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधिय च एयट्ठं । (304)
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो ॥327॥
जो पुण णिरावराधो चेदा णिस्संकिओ उ सो होइ । (305)
आराहणाइ णिच्चं वट्टेइ अहं ति जाणंतो ॥॥
साधित अराधित राध अर संसिद्धि सिद्धि एक है ।
बस राध से जो रहित है वह आतमा अपराध है ॥३०४॥

निरपराध है जो आतमा वह आतमा नि:शंक है ।
'मैं शुद्ध हूँ' - यह जानता आराधना में रत रहे ॥३०५॥

अन्वयार्थ : [संसिद्धिराधसिद्धं] संसिद्धि, राध, सिद्ध, [साधियमाराधिय] साधित [च] और आराधित - [एयट्ठं] ये एकार्थवाची हैं, [जो] जो [खलु चेदा] आत्मा निश्चय से [अवगदराधो] अपगतराध (राध से रहित) है [सो होदि अवराधो] वह (आत्मा) अपराध होता है । [जो पुण] और जो [चेदा] आत्मा [णिरावराधो] निरपराध है, [णिस्संकिओ] वह नि:शंक [उ सो होइ] होता है । [अहं ति जाणंतो] ऐसा (आत्मा) ही मैं हूँ - ऐसा जानता हुआ (आत्मा) [आराहणाइ] आराधना में [णिच्चं वट्टेइ] सदा वर्तता है ।

परमार्थ से प्रतिक्रमण विष-कुम्भ, अप्रतिक्रमण अमृत-कुम्भ

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य । (306)
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुंभो ॥328॥
अप्पडिकमणप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव । (307)
अणियत्ती य अणिंदागरहासोही अमयकुंभो ॥329॥
प्रतिक्रमण अर प्रतिसरण परिहार निवृत्ति धारणा ।
निन्दा गरहा और शुद्धि अष्टविध विषकुंभ हैं ॥३०६॥
अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण अर अपरिहार अधारणा ।
अनिन्दा अनिवृत्त्यशुद्धि अगर्हा अमृतकुंभ हैं ॥३०७॥

अन्वयार्थ : [पडिकमणं] प्रतिक्रमण, [पडिसरणं] प्रतिसरण, [परिहारो] परिहार, [धारणा] धारणा, [णियत्ती य] और निवृत्ति, [णिंदा गरहा] निन्दा, गर्हा और [सोही] शुद्धि - ये [अट्ठविहो] आठ प्रकार का [होदि विसकुंभो] विषकुंभ होता है । [अप्पडिकमणप्पडिसरणं] अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, [अप्परिहारो] अपरिहार, [अधारणा चेव] और अधारणा, [अणियत्ती य] और अनिवृत्ति, [अणिंदागरहासोही] अनिन्दा, अगर्हा और अशुद्धि - ये (आठ प्रकार के) [अमयकुंभो] अमृतकुंभ हैं ।

अब यहाँ कहते हैं कि निश्चय से यह जीव कर्मों का कर्त्ता नहीं है --

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं । (308)
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥330॥
जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते । (309)
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥331॥
ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो आदा । (310)
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥332॥
कम्मं पडुच्च कत्त कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि । (311)
उप्पज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसदे अण्णा ॥333॥
है जगत में कटकादि गहनों से सुवर्ण अनन्य ज्यों ।
जिन गुणों में जो द्रव्य उपजे उनसे जान अनन्य त्यों ॥३०८॥
जीव और अजीव के परिणाम जो जिनवर कहे ।
वे जीव और अजीव जानो अनन्य उन परिणाम से ॥३०९॥
ना करे पैदा किसी को बस इसलिए कारण नहीं ।
किसी से ना हो अत: यह आतमा कारज नहीं ॥३१०॥
कर्म आश्रय होय कर्ता कर्ता आश्रय कर्म भी ।
यह नियम अन्यप्रकार से सिद्धि न कर्ता-कर्म की ॥३११॥

अन्वयार्थ : [दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं] जो द्रव्य जिन गुणों से उत्पन्न होता है, [तं तेहिं जाणसु अणण्णं] उसे उन गुणों से अनन्य जानो [जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं] जैसे कड़ा आदि पर्यायों से [कणयं अणण्णमिह] सोना अनन्य है ।
[जीवस्साजीवस्स दु] जीव और अजीव के [जे परिणामा दु] जो परिणाम [देसिदा सुत्ते] सूत्र में बताये गये हैं [तं जीवमजीवं वा] उस जीव या अजीव को [तेहिमणण्णं वियाणाहि] उन (परिणामों) से अनन्य जानो ।
[ण कुदोचि वि उप्पण्णो] किसी से उत्पन्न नहीं हुआ [जम्हा] इसकारण [कज्जं ण तेण सो आदा] यह आत्मा किसी का कार्य नहीं है [उप्पादेदि ण किंचि वि] किसी को उत्पन्न नहीं करता [कारणमवि तेण ण स होदि] इसकारण किसी का कारण भी नहीं है ।
[कम्मं पडुच्च कत्त] कर्म के आश्रय से कर्ता होता है [तह] तथा [कत्तरं पडुच्च कम्माणि उप्पज्जंति] कर्ता के आश्रय से कर्म उत्पन्न होते हैं [य णियमा] ऐसा नियम है [सिद्धी दु ण दीसदे अण्णा] अन्य किसी भी प्रकार से (कर्ता-कर्म की) सिद्धि नहीं देखी जाती ।

ज्ञानावरणादि कर्म-प्रकृतियों का आत्मा के साथ जो बंध है, वह अज्ञान का ही महात्म्य है, ऐसा बताते हैं --

चेदा दु पयडीअट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ । (312)
पयडी वि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ॥334॥
एवं बंधो उ दोण्हं पि अण्णोण्णप्पच्चया हवे । (313)
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायदे ॥335॥
उत्पन्न होता नष्ट होता जीव प्रकृति निमित्त से ।
उत्पन्न होती नष्ट होती प्रकृति जीव निमित्त से ॥३१२॥
यों परस्पर निमित्त से हो बंध जीव रु कर्म का ।
बस इसतरह ही उभय से संसार की उत्पत्ति हो ॥३१३॥
अन्वयार्थ : [चेदा दु] चेतयिता (आत्मा) [पयडीअट्ठं] प्रकृति के निमित्त से [उप्पज्जइ विणस्सइ] उत्पन्न होता है और नष्ट होता है । इसीप्रकार [पयडी वि चेययट्ठं] प्रकृति भी चेतन आत्मा के निमित्त से [उप्पज्जइ विणस्सइ] उत्पन्न होती है और नष्ट होती है ।
[एवं] इसप्रकार [अण्णोण्णप्पच्चया हवे] परस्पर निमित्त से [अप्पणो पयडीए य] आत्मा और प्रकृति [बंधो उ दोण्हं पि] दोनों का बंध होता है [संसारो तेण जायदे] उससे संसार होता है ।

जब तक कर्मोदय से होने वाले रागादि-भाव को नहीं छोडे तब तक अज्ञानी अन्यथा ज्ञानी

जा एस पयडीअट्ठं चेदा णेव विमुञ्चए । (314)
अयाणओ हवे ताव मिच्छादिट्ठी असंजओ ॥336॥
जदा विमुञ्चए चेदा कम्मफलमणंतयं । (315)
तदा विमुत्ते हवदि जाणओ पासओ मुणी ॥337॥
जबतक न छोड़े आतमा प्रकृति निमित्तक परिणमन ।
तबतक रहे अज्ञानि मिथ्यादृष्टि एवं असंयत ॥३१४॥
जब अनन्ता कर्म का फल छोड़ दे यह आतमा ।
तब मुक्त होता बंध से सद्दृष्टि ज्ञानी संयमी ॥३१५॥
अन्वयार्थ : [जा एस] जबतक यह [चेदा] आत्मा [पयडीअट्ठं] प्रकृति के निमित्त (से उपजना-विनशना) [णेव विमुञ्चए] नहीं छोड़ता; [अयाणओ हवे ताव] तबतक वह अज्ञानी है, [मिच्छादिट्ठी] मिथ्यादृष्टि है, [असंजओ] असंयत है ।
[जदा चेदा] जब यह आत्मा [कम्मफलमणंतयं] अनंत कर्मफल [विमुञ्चए] छोड़ता है; [तदा] तब वह [जाणओ] ज्ञायक है, ज्ञानी है, [पासओ] दर्शक है, [मुणी] मुनि है और [विमुत्ते हवदि] विमुक्त (बंध-रहित) होता है ।

कर्म-फल को भोगते रहना जीव का स्वभाव नहीं, अज्ञान भाव

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि । (316)
णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि ॥338॥
प्रकृतिस्वभावस्थित अज्ञजन ही नित्य भोगें कर्मफल ।
पर नहीं भोगें विज्ञजन वे जानते हैं कर्मफल ॥३१६॥
अन्वयार्थ : [अण्णाणी] अज्ञानी [पयडिसहावट्ठिदो] प्रकृति के स्वभाव में स्थित रहता हुआ [कम्मफलं] कर्मफल को [वेदेदि] वेदता (भोगता) है [णाणी पुण] और ज्ञानी तो [कम्मफलं] कर्मफल को [जाणदि उदिदं] (कर्म का) उदय-मात्र जानता है, [ण वेदेदि] भोगता नहीं ।

ज्ञानी नि:श्शंक होता हुआ कर्म-फल जानता हुआ आराधना में तत्पर रहता है

जो पुण णिरवराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि ।
आराहणाए णिच्चं वट्टदि अहमिदी वियाणन्तो ॥339॥
अन्वयार्थ : [जो पुण णिरवराहो] पुन: जो अपराध रहित [चेदा] आत्मा है, [णिस्संकिदो दु सो] वह निश्शंक ही [होदि] होता हुआ [अहमिदी वियाणन्तो] अपने आपको जानता (अनुभवता) हुआ [आराहणाए णिच्चं] निरन्तर आराधना में ही [वट्टदि] वर्तता है ॥३३९॥

अब यहाँ बताते हैं कि अज्ञानी जीव नियम से कर्मों का वेदक ही होता है --

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठु वि अज्झाइदूण सत्थाणि । (317)
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥340॥
णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणेदि । (318)
महुरं कडुयं बहुविहमवेयओ तेण सो होइ ॥341॥
गुड़-दूध पीता हुआ भी निर्विष न होता सर्प ज्यों ।
त्यों भलीभाँति शास्त्र पढ़कर अभवि प्रकृति न तजे ॥३१७॥
निर्वेद से सम्पन्न ज्ञानी मधुर-कड़वे नेक विध ।
वे जानते हैं कर्मफल को हैं अवेदक इसलिए ॥३१८॥
अन्वयार्थ : [सुट्ठु वि] भली-भाँति [अज्झाइदूण सत्थाणि] शास्त्रों का अध्ययन करके भी (अभव्य जीव) [पयडिमभव्वो] प्रकृति के स्वभाव को [ण मुयदि] नहीं छोड़ता [गुडदुद्धं] गुड़ मिश्रित दूध [पिबंता] पीते हुए [पि] भी [ण पण्णया] सर्प नहीं [णिव्विसा होंति] निर्विष होते ।
[णिव्वेयसमावण्णो] निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्त [णाणी] ज्ञानी [कम्मप्फलं] कर्म के फल को [महुरं कडुयं] मीठा-कड़वा [बहुविहम] अनेक प्रकार का [वियाणेदि] जानता हुआ, [अवेयओ तेण सो होइ] वह उनका अवेदक ही है ।

अब इसी कर्तृत्व व भोक्तृत्व के अभाव का दृष्टांत पूर्वक समर्थन करते हैं --

ण वि कुव्वइ ण वि वेयइ णाणी कम्माइं बहुपयाराइं । (319) ।
जाणइ पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ॥342॥
दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव । (320)
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥343॥
ज्ञानी करे-भोगे नहीं बस सभी विध-विध करम को ।
वह जानता है कर्मफल बंध पुण्य एवं पाप को ॥३१९॥
ज्यों दृष्टि त्यों ही ज्ञान जग में है अकारक अवेदक ।
जाने करम के बंध उदय मोक्ष एवं निर्जरा ॥३२०॥

अन्वयार्थ : [णाणी] ज्ञानी [कम्माइं बहुपयाराइं] अनेकप्रकार के कर्मों को [ण वि कुव्वइ] करता भी नहीं है और [ण वि वेयइ] भोगता भी नहीं है [पुण] किन्तु [पुण्णं च पावं च] शुभ और अशुभ [कम्मफलं] कर्मफल और [बंधं] कर्म-बंध को [जाणइ] मात्र-जानता ही है । [जहेव] जिसप्रकार [दिट्ठी] दृष्टि (नेत्र दृश्य पदार्थों को देखती ही है, उन्हें करती-भोगती नहीं है) [णाणंअकारयं तह] उसीप्रकार ज्ञान अकारक [अवेदयं चेव] और अवेदक है और [बंधमोक्खं] बंध, मोक्ष, [कम्मुदयं णिज्जरं चेव] कर्मोदय और निर्जरा को [जाणइ य] मात्र जानता ही है ।

अब यहाँ बताते हैं कि जो एकान्त से आत्मा को कर्ता मानते हैं उनके भी अज्ञानी लोगों के समान मोक्ष नहीं है ऐसा उपदेश करते हैं --

लोयस्स कुणदि विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते । (321)
समणाणं पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काऐ ॥344॥
लोयसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसदि विसेसो । (322)
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाण वि अप्पओ कुणदि ॥345॥
एवं ण को वि मोक्खो दीसदि लोयसमणाणं दोण्ह पि । (323)
णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए ॥346॥
जगत-जन यों कहें विष्णु करे सुर-नरलोक को ।
रक्षा करूँ षट्काय की यदि श्रमण भी माने यही ॥३२१॥
तो ना श्रमण अर लोक के सिद्धान्त में अन्तर रहा ।
सम मान्यता में विष्णु एवं आतमा कर्ता रहा ॥३२२॥
इसतरह कर्तृत्व से नित ग्रसित लोक रु श्रमण को ।
रे मोक्ष दोनों का दिखाई नहीं देता है मुझे ॥३२३॥

अन्वयार्थ : [लोयस्स] लौकिकजनों के मत में [सुरणारयतिरियमाणुसे] देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्य रूप [सत्ते] प्राणियों को [विण्हू] विष्णु [कुणदि] करता है [समणाणं पि य] और श्रमणों के मत में भी [छव्विहे काऐ] छहकाय के जीवों को [अप्पा जदि कुव्वदि] यदि आत्मा करता हो तो फिर तो [लोयसमणाणमेयं सिद्धंतं] लौकिकजनों और श्रमणों का एक सिद्धान्त होने से [विसेसो] दोनों में अन्तर [जइ ण दीसदि] दिखाई नहीं देता । [लोयस्स कुणइ विण्हू] लोक के मत में विष्णु करता है और [समणाण वि अप्पओ कुणदि] श्रमणों के मत में भी आत्मा करता है ।

[एवं] इसप्रकार [सदेवमणुयासुरे लोए] देव, मनुष्य और असुरलोक को [णिच्चं कुव्वंताणं] सदा करते हुए [लोयसमणाणं दोण्ह पि] लोक और श्रमण - दोनों में से [ण को वि] कोई का भी [मोक्खो दीसदि] मोक्ष दिखाई नहीं देता ।

अब पूर्व-पक्ष के उत्तर में कथन करते हैं कि निश्चय से आत्मा का पुदगलद्रव्य के साथ में कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है, तब आत्मा कैसे कर्त्ता बनता है ?

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति अविदिदत्था । (324)
जाणंति णिच्छएण दु ण य मह परमाणुमित्तमवि किंचि ॥347॥
जह को वि णरो जंपदि अम्हं गामविसयणयररट्ठं । (225)
ण य होंति जस्स ताणि दु भणदि य मोहेण सो अप्पा ॥348॥
एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णीसंसयं हवदि एसो । (326)
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि ॥349॥
तम्हा ण मे त्ति णच्चा दोण्ह वि एदाण कत्तविवसायं । (327)
परदव्वे जाणंतो जाणेज्जो दिट्ठिरहिदाणं ॥350॥

अतत्त्वविद् व्यवहार ग्रह परद्रव्य को अपना कहें ।
पर तत्त्वविद् जाने कि पर परमाणु भी मेरा नहीं ॥३२४॥
ग्राम जनपद राष्ट मेरा कहे कोई जिसतरह ।
किन्तु वे उसके नहीं हैं मोह से ही वह कहे ॥३२५॥
इसतरह जो 'परद्रव्य मेरा' - जानकर अपना करे ।
संशय नहीं वह ज्ञानि मिथ्यादृष्टि ही है जानना ॥३२६॥
'मेरे नहीं ये' - जानकर तत्त्वज्ञ ऐसा मानते ।
है अज्ञता कर्तृत्व-बुद्धि लोक एवं श्रमण की ॥३२७॥

अन्वयार्थ : [अविदिदत्था] अज्ञानीजन [ववहारभासिदेण दु] व्यवहारमूढ़ होकर [परदव्वं मम भणंति] परद्रव्य मेरा है, ऐसा कहते हैं; [णिच्छएण दु] निश्चय-प्रतिबुद्ध (ज्ञानी) [ण य मह परमाणुमित्तमवि किंचि] कोई (पर-पदार्थ) परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है, [जाणंति] ऐसा जानते हैं ।

[जह को वि णरो] जैसे किसी मनुष्य के [अम्हं गामविसयणयररट्ठं] 'ग्राम, देश, नगर और राष्ट्र मेरा है', ऐसा [जंपदि] कहने से [य] वे [जस्स] उसके [ण होंति] नहीं होते [य मोहेण सो अप्पा] इसे मोह से वह जीव [ताणि दु भणदि] ऐसा कहता है (कि वे मेरे हैं) ।

[एमेव] इसीप्रकार [णाणी] ज्ञानी भी [परदव्वं मम इदि जाणंतो] 'परद्रव्य मेरा है', ऐसा जानता हुआ उन्हें [अप्पयं कुणदि] अपना करता है [एसो] तो वह [णीसंसयं] नि:संदेह [मिच्छदिट्ठी] मिथ्यादृष्टि [हवदि] होता है ।

[तम्हा] इसलिए [ण मे त्ति णच्चा] (परद्रव्य) मेरे नहीं हैं - यह जानकर [दोण्ह वि एदाण] इन दोनों (लोक और श्रमण) ही के [परदव्वे] परद्रव्य में [कत्तविवसायं] कर्तृत्व के व्यवसाय को [जाणंतो] जानकर [जाणेज्जो दिट्ठिरहिदाणं] उनको सम्यग्दर्शन से रहित जानते हैं ।

जो करता है वही भोगता है -- द्रव्यार्थिक-नय और अन्य ही कर्ता है और अन्य ही भोगता -- पर्यायार्थिक-नय

केहिंचि दु पज्जएहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो । (345)
जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥351॥
केहिंचि दु पज्जएहिं विंणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो । (346)
जम्हा तम्हा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥352॥
जो चेव कुणदि सो चिय ण वेदए जस्स एस सिद्धंतो । (347)
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥353॥
अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो । (348)
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥354॥
यह आतमा हो नष्ट कुछ पर्याय से कुछ से नहीं ।
जो भोगता वह करे अथवा अन्य यह एकान्त ना ॥३४५॥
यह आतमा हो नष्ट कुछ पर्याय से कुछ से नहीं ।
जो करे भोगे वही अथवा अन्य यह एकान्त ना ॥३४६॥
जो करे, भोगे नहीं वह; सिद्धान्त यह जिस जीव का ।
वह जीव मिथ्यादृष्टि आर्हतमत विरोधी जानना ॥३४७॥
कोई करे कोई भरे यह मान्यता जिस जीव की ।
वह जीव मिथ्यादृष्टि आर्हतमत विरोधी जानना ॥३४८॥

अन्वयार्थ : [जम्हा] क्योंकि [केहिंचि दु पज्जएहिं विणस्सए] कदाचित् पर्यायों से नष्ट होता है और [णेव केहिंचि दु जीवो] कदाचित् नष्ट नहीं होता है जीव [तम्हा] इसलिए [कुव्वदि सो वा] वही करता है अथवा [अण्णो व] अन्य ही (करता है) - [णेयंतो] ऐसा एकान्त नहीं है ।
[जम्हा] क्योंकि [केहिंचि दु पज्जएहिं विणस्सए] कदाचित् पर्यायों से नष्ट होता है और [णेव केहिंचि दु जीवो] कदाचित् नष्ट नहीं होता है

जीव [तम्हा] इसलिए [वेददि सो वा] वही भोगता है अथवा [अण्णो व] अन्य ही (भोगता है) - [णेयंतो] ऐसा एकान्त नहीं है ।
[जो चेव कुणदि] जो करता है, [सो चिय ण वेदए] वह नहीं भोगता - [जस्स एस सिद्धंतो] ऐसा जिसका सिद्धान्त है, [सो जीवो] उस जीव को [अणारिहदो] अरहन्त के मत के बाहर [णादव्वो मिच्छादिट्ठी] मिथ्यादृष्टि जानो ।
[अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि] अन्य करता है और अन्य भोगता है - [जस्स एस सिद्धंतो] ऐसा जिसका सिद्धान्त है, [सो जीवो] उस जीव को [अणारिहदो] अरहन्त के मत के बाहर [णादव्वो मिच्छादिट्ठी] मिथ्यादृष्टि जानो ।

भाव-कर्म का कर्त्ता जीव ही है

मिच्छत्तं जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाणं । (328)
तम्हा अचेदणा ते पयडी णणु कारगो पत्ते ॥355॥
सम्मत्ता जदि पयडी सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं ।
तम्हा अचेदणा ते पयडी णणु कारगा पत्ता ॥356॥
अहवा एसो जीवो पोग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं । (329)
तम्हा पोग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो ॥357॥
अह जीवो पयडी तह पोग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं । (330)
तम्हा दोहिं कदं तं दोण्णि वि भुंजंति तस्स फलं ॥358॥
अह ण पयडी ण जीवो पोग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं । (331)
तम्हा पोग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा ॥359॥
मिथ्यात्व नामक प्रकृति मिथ्यात्वी करे यदि जीव को ।
फिर तो अचेतन प्रकृति ही कर्तापने को प्राप्त हो ॥३२८॥
अथवा करे यह जीव पुद्गल दरब के मिथ्यात्व को ।
मिथ्यात्वमय पुद्गल दरब ही सिद्ध होगा जीव ना ॥३२९॥
यदि जीव प्रकृति उभय मिल मिथ्यात्वमय पुद्गल करे ।
फल भोगना होगा उभय को उभयकृत मिथ्यात्व का ॥३३०॥
यदि जीव प्रकृति ना करें मिथ्यात्वमय पुद्गल दरब ।
मिथ्यात्वमय पुद्गल सहज, क्या नहीं यह मिथ्या कहो ? ॥३३१॥
अन्वयार्थ : [जदि] यदि [मिच्छत्तं पयडी] मिथ्यात्व (कर्म) प्रकृति [मिच्छादिट्ठी करेदि] मिथ्यादृष्टि करे [अप्पाणं] आत्मा को [तम्हा] तो [ते] उसे (मिथ्यात्वभाव को) [अचेदणा] अचेतनपना हो [पयडी णणु कारगो पत्ते] प्रकृति का कारण प्राप्त होने से ।
[जदि] यदि [सम्मत्ता पयडी] सम्यक्त्व (कर्म) प्रकृति [सम्मादिट्ठी करेदि] सम्यग्दृष्टि करे [अप्पाणं] आत्मा को [तम्हा] तो [ते] उसे (सम्यक्त्व को) [अचेदणा] अचेतनपना हो [पयडी णणु कारगो पत्ते] प्रकृति का कारण प्राप्त होने से ।
[अहवा] अथवा [एसो] प्रत्यक्ष-भूत [जीवो] जीव [पोग्गलदव्वस्स] पुद्गल-द्रव्य के [कुणदि मिच्छत्तं] मिथ्यात्व को करे [तम्हा] तो [पोग्गलदव्वं] पुद्गल-द्रव्य [मिच्छादिट्ठी] मिथ्यादृष्टि होगा [ण पुण जीवो] फिर जीव नहीं ।
[अह] अथवा [जीवो पयडी तह] जीव और प्रकृति - दोनों मिलकर [पोग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं] पुद्गल-द्रव्य को मिथ्यात्वभावरूप करते हैं - [तम्हा] तो [दोहिं कदं तं] जो दोनों ने किया [तस्स फलं] उसका फल [दोण्णि वि भुंजंति] दोनों को ही भोगना चाहिए ।
[अह] अथवा [ण पयडी ण जीवो] न प्रकृति और न जीव [पोग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं] पुद्गल-द्रव्य को मिथ्यात्व-भावरूप करता है [तम्हा] तो [पोग्गलदव्वं] पुद्गल-द्रव्य [मिच्छत्तं] (स्वयं) मिथ्यात्वभावरूप होगा [तं तु ण हु मिच्छा] क्या यह वास्तव में मिथ्या नहीं है ?

आत्मा सर्वथा अकर्ता नहीं है, कथंचित् कर्त्ता भी है

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहिं । (332)

कम्मेहि सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं ॥360॥
कम्मेहि सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहिं । (333)
कम्मेहि य मिच्छत्तं णिज्जदि णिज्जदि असंजमं चेव ॥361॥
कम्मेहि भमाडिज्जदि उड्ढमहो चावि तिरियलोयं च । (334)
कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुहं जेत्तियं किंचि ॥362॥
जम्हा कम्मं कुव्वदि कम्मं देदि हरदि त्ति जं किंचि । (335)
तम्हा उ सव्वजीवा अकारगा होंति आवण्णा ॥363॥
पुरिसित्थियाहिलासी इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसदि । (336)
एसा आयरियपरंपरागदा एरिसी दु सुदी ॥364॥
तम्हा ण को वि जीवो अबंभचारी दु अम्ह उवदेसे । (337)
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसदि इदि भणिदं ॥365॥
जम्हा घादेदि परं परेण घादिज्जदे य सा पयडी । (338)
एदेणत्थेण किर भण्णदि परघादणामेत्ति ॥366॥
तम्हा ण को वि जीवो वघादेओ अत्थि अम्ह उवदेसे । (339)
जम्हा कम्मं चेव हि कंमं घादेदि इवि भणिदं ॥367॥
एवं संखुवएसं जे उ परूवेंति एरिसं समणा । (340)
तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारगा सव्वे ॥368॥
अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि । (341)
ऐसो मिच्छसहावो तुम्हं एयं मुणंतस्स ॥369॥
अप्पा णिच्चोऽसंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्हि । (342)
ण वि सो सक्कदि तत्ते हीणो अहिओ य कादुं जे ॥370॥
जीवस्स जीवरूवं वित्थरदो जाण लोगमेत्तं खु । (343)
तत्ते सो किं हीणो अहिओ य कहं कुणदि दव्वं ॥371॥
अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अच्छदे त्ति मदं । (344)
तम्हा ण वि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि ॥372॥
कर्म अज्ञानी करे अर कर्म ही ज्ञानी करे ।
जिय को सुलावे कर्म ही अर कर्म ही जाग्रत करे ॥३३२॥
कर्म करते सुखी एवं दु:खी करते कर्म ही ।
मिथ्यात्वमय कर्महि करे अर असंयमी भी कर्म ही ॥३३३॥
कर्म ही जिय भ्रमाते हैं ऊर्ध्व-अध-तिरलोक में ।
जो कुछ जगत में शुभ-अशुभ वह कर्म ही करते रहें ॥३३४॥
कर्म करते कर्म देते कर्म हरते हैं सदा ।
यह सत्य है तो सिद्ध होंगे अकारक सब आतमा ॥३३५॥
नरवेद है महिलाभिलाषी नार चाहे पुरुष को ।
परम्परा आचार्यों से बात यह श्रुतपूर्व है ॥३३६॥
अब्रह्मचारी नहीं कोई हमारे उपदेश में ।
क्योंकि ऐसा कहा है कि कर्म चाहे कर्म को ॥३३७॥

जो मारता है अन्य को या मारा जावे अन्य से ।
परघात नामक कर्म की ही प्रकृति का यह काम है ॥३३८॥
परघात करता नहीं कोई हमारे उपदेश में ।
क्योंकि ऐसा कहा है कि कर्म मारे कर्म को ॥३३९॥
सांख्य के उपदेशसम जो श्रमण प्रतिपादन करें ।
कर्ता प्रकृति उनके यहाँ पर है अकारक आतमा ॥३४०॥
या मानते हो यह कि मेरा आतमा निज को करे ।
तो यह तुम्हारा मानना मिथ्यास्वभावी जानना ॥३४१॥
क्योंकि आतम नित्य है एवं असंख्य-प्रदेशमय ।
ना उसे इससे हीन अथवा अधिक करना शक्य है ॥३४२॥
विस्तार से भी जीव का जीवत्व लोकप्रमाण है ।
ना होय हीनाधिक कभी कैसे करे जिय द्रव्य को ॥३४३॥
यदी माने रहे ज्ञायकभाव ज्ञानस्वभाव में ।
तो भी आतम स्वयं अपने आतमा को ना करे ॥३४४॥

अन्वयार्थ : [कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि] कर्म ही अज्ञानी करता है [णाणी तहेव कम्मेहिं] तथा कर्म ही ज्ञानी, [कम्मेहि सुवाविज्जदि] कर्म ही सुलाता है [जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं] तथा कर्म ही जगाता है, [कम्मेहि सुहाविज्जदि] कर्म ही सुखी करता है [दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहिं] तथा कर्म ही दु:खी करता है; [कम्मेहि य मिच्छत्तं णिज्जदि] कर्म ही उसे मिथ्यात्व को प्राप्त कराते हैं [णिज्जदि असंजमं चेव] तथा कर्म ही असंयमी बनाते हैं । [कम्मेहि भमाडिज्जदि] कर्म ही भ्रमाता है [उड्ढमहो चावि तिरियलोयं च] ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक में । [जेत्तियं किंचि] जो कुछ भी [सुहासुहं] शुभ और अशुभ है [कम्मेहि चेव किज्जदि] कर्म ही करते हैं । [जम्हा कम्मं कुव्वदि] इसलिए कर्म ही करता है, [कम्मं देदि] कर्म ही देता है [हरदि त्ति जं किंचि] हर लेता है इत्यादि जो कुछ है (सब कर्म ही करता है) । [तम्हा उ सव्वजीवा] इसप्रकार सभी जीव [अकारगा होंति आवण्णा] सर्वथा अकारक ही सिद्ध होते हैं । [पुरिसित्थियाहिलासी] पुरुष-वेद कर्म स्त्री का अभिलाषी है [इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसदि] और स्त्री-वेद कर्म पुरुष की अभिलाषा करता है - [एसा आयरियपरंपरागदा] ऐसी यह आचार्यों की परम्परागत [एरिसी दु सुदी] श्रुति है । [तम्हा] इसप्रकार [अम्ह उवदेसे] हमारे उपदेश में तो [ण को वि जीवो] कोई भी जीव [अबंभचारी दु] अब्रह्मचारी नहीं है; [जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसदि] क्योंकि कर्म ही कर्म की अभिलाषा करता है - [इदि भणिदं] ऐसा कहा है । [जम्हा घादेदि परं] जो पर को मारता है [परेण घादिज्जदे य] और जो पर के द्वारा मारा जाता है; [सा पयडी] वह प्रकृति है, [एदेणत्थेण किर भण्णदि] इस अर्थ में जिसे [भण्णदि परघादणामेत्ति] परघात नामक कर्म कहा जाता है । [तम्हा] इसलिए [अम्ह उवदेसे] हमारे उपदेश में [को वि जीवो] कोई भी जीव [ण वघादेओ अत्थि] उपघातक (मारनेवाला) नहीं है; [जम्हा कम्मं चेव हि कंमं] क्योंकि कर्म ही कर्म को [घादेदि] मारता है - [इवि भणिदं] ऐसा कहा गया है ।

[एवं] इसप्रकार [संखुवएसं] ऐसा सांख्य-मत का उपदेश [जे उ परूवेंति एरिसं समणा] जो श्रमण (जैन मुनि) प्ररूपित करते हैं, [तेसिं पयडी कुव्वदि] उनके यहाँ (मत में) प्रकृति ही करती है [अप्पा य अकारगा सव्वे] और आत्मा तो पूर्णत: अकारक है । [अहवा] अथवा [मण्णसि] यदि तुम यह मानते हो कि [मज्झं अप्पा] मेरा आत्मा [अप्पाणमप्पणो कुणदि] अपने (द्रव्य-रूप) आत्मा को करता है [ऐसो तुम्हं एयं मुणंतस्स] तो तुम्हारा यह मानना [मिच्छसहावो] मिथ्या-भाव है; क्योंकि [समयम्हि] सिद्धान्त में [अप्पा णिच्चोऽसंखेज्जपदेसो] आत्मा को नित्य और असंख्यात-प्रदेशी [देसिदो दु] बताया गया है, [सो] वह [तत्ते] उससे [हीणो अहिओ य] हीन या अधिक [ण वि] नहीं [कादुं जे] किया जा [सक्कदि] सकता और [जीवस्स जीवरूवं] जीव का जीवरूप [वित्थरदो] विस्तार [जाण लोगमेत्तं खु] निश्चय से लोक-मात्र जानो; [तत्ते सो किं हीणो अहिओ] क्या वह उससे हीन या अधिक होता है? [य कहं कुणदि दव्वं] (यदि नहीं) तो फिर वह द्रव्य को कैसे करता है ? [अह जाणगो दु भावो] अथवा ज्ञायक-भाव तो [णाणसहावेण] ज्ञान-स्वभाव में [अच्छदे त्ति मदं] स्थित रहता है - यदि ऐसा माना जाये [तम्हा] तो इससे [सयमप्पणो] आत्मा स्वयं [अप्पा अप्पयं तु] अपने आत्मा को [ण वि कुणदि] नहीं करता - (यह सिद्ध

होगा) ।

सम्यग्दृष्टियों को विषयों के प्रति राग क्यों नहीं होता

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए । (366)
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥373॥
दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे कम्मे । (367)
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तम्हि कम्मम्हि ॥374॥
दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काए । (368)
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु काएसु ॥375॥
णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स । (369)
ण वि तहिं पोग्गलदव्वस्स को वि घादो दु णिद्दिट्ठो ॥376॥
जीवस्स जे गुणा केइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु । (370)
तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु ॥377॥
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा । (371)
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी ॥378॥
ज्ञान-दर्शन-चरित ना किंचित् अचेतन विषय में ।
इसलिए यह आतमा क्या कर सके उस विषय में ॥३६६॥
ज्ञान-दर्शन-चरित ना किंचित् अचेतन कर्म में ।
इसलिए यह आतमा क्या कर सके उस कर्म में ॥३६७॥
ज्ञान-दर्शन-चरित ना किंचित् अचेतन काय में ।
इसलिए यह आतमा क्या कर सके उस काय में ॥३६८॥
सद्ज्ञान का सम्यक्त्व का उपघात चारित्र का कहा ।
अन्य पुद्गल द्रव्य का ना घात किंचित् भी कहा ॥३६९॥
जीव के जो गुण कहे वे हैं नहीं परद्रव्य में ।
बस इसलिए सद्दृष्टि को है राग विषयों में नहीं ॥३७०॥
अनन्य हैं परिणाम जिय के राग-द्वेष-विमोह ये ।
बस इसलिए शब्दादि विषयों में नहीं रागादि ये ॥३७१॥

अन्वयार्थ : [दंसणणाणचरित्तं] दर्शन, ज्ञान और चारित्र [अचेदणे विसए] अचेतन विषयों में [किंचि वि णत्थि दु] किंचित्मात्र भी नहीं हैं, [तम्हा] इसलिए [चेदयिदा] आत्मा [तेसु विसएसु] उन विषयों में [किं घादयदे] क्या घात करेगा ?

[दंसणणाणचरित्तं] दर्शन, ज्ञान और चारित्र [अचेदणे कम्मे] अचेतन कर्मों में [किंचि वि णत्थि दु] किंचित्मात्र भी नहीं हैं, [तम्हा] इसलिए [चेदयिदा] आत्मा [तेसु कम्मम्हि] उन कर्मों में [किं घादयदे] क्या घात करेगा ?

[दंसणणाणचरित्तं] दर्शन, ज्ञान और चारित्र [अचेदणे काए] अचेतन काय में [किंचि वि णत्थि दु] किंचित्मात्र भी नहीं हैं, [तम्हा] इसलिए [चेदयिदा] आत्मा [तेसु काएसु] उन कायों में [किं घादयदे] क्या घात करेगा ?

[णाणस्स दंसणस्स य] दर्शन, ज्ञान [तहा चरित्तस्स] और चारित्र का [भणिदो घादो] घात कहा [तहिं] वहाँ [पोग्गलदव्वस्स] पुद्गल-द्रव्य का [को वि घादो दु] किंचित्मात्र भी घात [ण णिद्दिट्ठो] नहीं कहा है ।

[जीवस्स जे गुणा केइ] जो कोई जीव के गुण हैं (वे) [खलु] वस्तुत: परद्रव्य में [णत्थि] नहीं हैं [तम्हा सम्मादिट्ठिस्स] इसलिए सम्यग्दृष्टि को [णत्थि रागो दु विसएसु] विषयों के प्रति राग नहीं होता ।

[रागो दोसो मोहो य] राग, द्वेष और मोह [जीवस्सेव] जीव के ही [अणण्णपरिणामा] अनन्य परिणाम हैं [एदेण कारणेण दु] इसकारण ही

[सद्दादिसु णत्थि रागादी] रागादि शब्दादि विषयों में नहीं हैं ।

शब्दादि अचेतन होने से रागादिक की उत्पत्ति में नियामक कारण नहीं

अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरए गुणुप्पाओ । (372)
तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण ॥379॥
गुणोत्पादन द्रव्य का कोई अन्य द्रव्य नहीं करे ।
क्योंकि सब ही द्रव्य निज-निज भाव से उत्पन्न हों ॥३७२॥

अन्वयार्थ : [अण्णदविएण] अन्य द्रव्य से [अण्णदवियस्स] अन्य द्रव्य के [गुणुप्पाओ] गुणों की उत्पत्ति [णो कीरए] नहीं की जा सकती है [तम्हा दु] इससे (यह सिद्धान्त प्रतिफलित होता है कि) [सव्वदव्वा] सर्व द्रव्य [सहावेण] स्वभाव से [उप्पज्जंते] उत्पन्न होते हैं ।

व्यवहार से कर्त्ता और कर्म भिन्न, निश्चय से अभिन्न

जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि । (349)
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि ॥380॥
जह सिप्पिओ दु करणेहिं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि । (350)
तह जीवो करणेहिं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि ॥381॥
जह सिप्पिओ दु करणाणि गिण्हदि ण सो दु तम्मओ होदि । (351)
तह जीवो करणाणि दु गिण्हदि ण य तम्मओ होदि ॥382॥
जह सिप्पि दु कम्मफलं भुंजदि ण सो दु तम्मओ होदि । (352)
तह जीवो कम्मफलं भुंजदि ण य तम्मदो होदि ॥383॥
एवं ववहारस्स दु वत्तव्वं दरिसणं समासेण । (353)
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं होदि ॥384॥
जह सिप्पिओ दु चेट्ठं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो से । (354)
तह जीवो वि य कम्मं कुवदि हवदि य अणण्णो से ॥385॥
जह चेट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्चदुक्खिओ होदि । (355)
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ॥386॥
ज्यों शिल्पि कर्म करे परन्तु कर्ममय वह ना बने ।
त्यों जीव कर्म करे परन्तु कर्ममय वह ना बने ॥३४९॥
ज्यों शिल्पि करणों से करे पर करणमय वह ना बने ।
त्यों जीव करणों से करे पर करणमय वह ना बने ॥३५०॥
ज्यों शिल्पि करणों को ग्रहे पर करणमय वह ना बने ।
त्यों जीव करणों को ग्रहे पर करणमय वह ना बने ॥३५१॥
ज्यों शिल्पि भोगे कर्मफल तन्मय परन्तु होय ना ।
त्यों जीव भोगे कर्मफल तन्मय परन्तु होय ना ॥३५२॥
संक्षेप में व्यवहार का यह कथन दर्शाया गया ।
अब सुनो परिणाम विषयक कथन जो परमार्थ का ॥३५३॥
शिल्पी करे जो चेष्टा उससे अनन्य रहे सदा ।
जीव भी जो करे वह उससे अनन्य रहे सदा ॥३५४॥
चेष्टा में मगन शिल्पी नित्य ज्यों दु:ख भोगता ।

यह चेष्टा रत जीव भी त्यों नित्य ही दु:ख भोगता ॥३५५॥

अन्वयार्थ : [जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि] जिसप्रकार शिल्पी (कुण्डलादि) कर्म करता हुआ [ण य सो दु तम्मओ होदि] तो भी वह उनसे तन्मय नहीं होता [तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि] उसीप्रकार जीव भी (पुण्य-पापरूप) कर्म करता हुआ [ण य तम्मओ होदि] उन से तन्मय नहीं होता ।

[जह सिप्पिओ दु करणेहिं कुव्वदि] जिसप्रकार शिल्पी के (छैनी-आदि) करण द्वारा करता है [ण य सो दु तम्मओ होदि] तो भी वह उनसे तन्मय नहीं होता [तह जीवो करणेहिं कुव्वदि] उसीप्रकार जीव भी (इन्द्रिय-मन-रूप) करण द्वारा करता हुआ [ण य तम्मओ होदि] उन से तन्मय नहीं होता ।

[जह सिप्पिओ दु करणाणि गिण्हदि] जिसप्रकार शिल्पी (छैनी-आदि) करण को ग्रहण करता हुआ [ण सो दु तम्मओ होदि] तो भी वह उनसे तन्मय नहीं होता [तह जीवो करणाणि दु गिण्हदि] उसीप्रकार जीव भी (इन्द्रिय-मन-रूप) करण को ग्रहण करता हुआ [ण य तम्मओ होदि] (उनसे) तन्मय नहीं होता ।

[जह सिप्पि दु कम्मफलं भुंजदि] जिसप्रकार शिल्पी (कुण्डलादि) कर्म के फल को भोगता हुआ [ण सो दु तम्मओ होदि] वह उससे तन्मय नहीं होता [तह जीवो कम्मफलं भुंजदि] उसीप्रकार जीव (सुख-दु:खादि) कर्म के फल को भोगता हुआ [ण य तम्मदो होदि] उनसे (सुख-दु:खादि से) तन्मय नहीं होता ।

[एवं ववहारस्स दु] इसप्रकार व्यवहार के [वत्तव्वं दरिसणं समासेण] वक्तव्य (मत) को संक्षेप में दर्शाकर [सुणु णिच्छयस्स वयणं] निश्चय का मत (मान्यता) सुनो [परिणामकदं तु जं होदि] जो परिणाम करने से होता है ।

[जह सिप्पिओ दु चेट्ठं कुव्वदि] जिसप्रकार शिल्पी चेष्टारूप कर्म करते हुए [हवदि य तहा अणण्णो से] वह उससे अनन्य होता है [तह जीवो वि य कम्मं कुवदि] उसीप्रकार जीव भी (अपने परिणामरूप) कर्म को करते हुए, [हवदि य अणण्णो से] उससे (अपने परिणामरूप कर्म से) वह (जीव) अनन्य है ।

[जह चेट्ठं कुव्वंतो दु] जिसप्रकार चेष्टा (कर्म) करता हुआ [सिप्पिओ] शिल्पी [णिच्चदुक्खिओ होदि] नित्य दु:खी होता है [तत्तो] उसीप्रकार [तह चेट्ठंतो दुही जीवो] (अपने परिणामरूप) चेष्टा को करता हुआ जीव दु:ख से [सिया अणण्णो] कदाचित् अनन्य है ।

इस निश्चय-व्यवहार कथन का दृष्टांत

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि । (356)
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु ॥387॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि । (357)
तह पासगो दु ण परस्स पासगो पासगो सो दु ॥388॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि । (358)
तह संजदो दु ण परस्स संजदो संजदो सो दु ॥389॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि । (359)
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु ॥390॥
एवं तु णिच्छयणयस्स भासिदं णाणदंसणचरित्ते । (360)
सुणु ववहारणयस्य य वत्तव्वं से समासेण ॥391॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण । (361)
तह परदव्वं जाणदि णादा वि सएग भावेण ॥392॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण । (362)
तह परदव्वं पस्सदि जीवो वि सएण भावेण ॥393॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण । (363)
तह परदव्वं विजहदि णादा वि सएण भावेण ॥394॥

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण । (364)
तह परदव्वं सद्दहदि सम्मदिट्ठी सहावेण ॥395॥
एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते । (365)
भणिदो अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो ॥396॥
ज्यों कलई नहीं है अन्य की यह कलई तो बस कलई है ।
ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है ॥३५६॥
ज्यों कलई नहीं है अन्य की यह कलई तो बस कलई है ।
दर्शक नहीं त्यों अन्य का दर्शक तो बस दर्शक ही है ॥३५७॥
ज्यों कलई नहीं है अन्य की यह कलई तो बस कलई है ।
संयत नहीं त्यों अन्य का संयत तो बस संयत ही है ।३५८॥
ज्यों कलई नहीं है अन्य की यह कलई तो बस कलई है ।
दर्शन नहीं त्यों अन्य का दर्शन तो बस दर्शन ही है ॥३५९॥
यह ज्ञान-दर्शन-चरण विषयक कथन है परमार्थ का ।
अब सुनो अतिसंक्षेप में तुम कथन नय व्यवहार का ॥३६०॥
पर-द्रव्य को ज्यों श्वेत करती कलई स्वयं स्वभाव से ।
बस त्योंहि ज्ञाता जानता पर-द्रव्य को निजभाव से ॥३६१॥
पर-द्रव्य को ज्यों श्वेत करती कलई स्वयं स्वभाव से ।
बस त्योंहि दृष्टा देखता पर-द्रव्य को निजभाव से ॥३६२॥
पर-द्रव्य को ज्यों श्वेत करती कलई स्वयं स्वभाव से ।
बस त्योंहि ज्ञाता त्यागता पर-द्रव्य को निजभाव से ॥३६३॥
पर-द्रव्य को ज्यों श्वेत करती कलई स्वयं स्वभाव से ।
सुदृष्टि त्यों ही श्रद्धता पर-द्रव्य को निजभाव से ॥३६४॥
यह ज्ञान-दर्शन-चरण विषयक कथन है व्यवहार का ।
अर अन्य पर्यय विषय में भी इसतरह ही जानना ॥३६५॥

अन्वयार्थ : [जह सेडिया दु ण परस्स] जिसप्रकार सेटिका (खड़िया मिट्टी या पोतने का चूना या कलई) पर (दीवाल) की नहीं है [सेडिया सेडिया य सा होदि] कलई, वह तो कलई ही है [तह जाणगो दु ण परस्स] उसीप्रकार ज्ञायक (आत्मा) परद्रव्यों (ज्ञेयरूप) का नहीं है, [जाणगो जाणगो सो दु] ज्ञायक तो ज्ञायक ही है ।

[जह सेडिया दु ण परस्स] जिसप्रकार सेटिका (खड़िया मिट्टी या पोतने का चूना या कलई) पर (दीवाल) की नहीं है [सेडिया सेडिया य सा होदि] कलई, वह तो कलई ही है [तह पासगो दु ण परस्स] उसीप्रकार दर्शक पर का नहीं है [पासगो पासगो सो दु] दर्शक तो दर्शक ही है ।

[जह सेडिया दु ण परस्स] जिसप्रकार सेटिका (खड़िया मिट्टी या पोतने का चूना या कलई) पर (दीवाल) की नहीं है [सेडिया सेडिया य सा होदि] कलई, वह तो कलई ही है [तह संजदो दु ण परस्स] उसीप्रकार संयत (पर का त्याग करनेवाला) पर का नहीं है, [संजदो संजदो सो दु] संयत तो संयत ही है ।

[जह सेडिया दु ण परस्स] जिसप्रकार सेटिका (खड़िया मिट्टी या पोतने का चूना या कलई) पर (दीवाल) की नहीं है [सेडिया सेडिया य सा होदि] कलई, वह तो कलई ही है [तह दंसणं दु ण परस्स] उसीप्रकार दर्शन (श्रद्धान) पर का नहीं है, [दंसणं दंसणं तं तु] दर्शन तो दर्शन ही है ।

[एवं तु] इसप्रकार [णाणदंसणचरित्ते] ज्ञान, दर्शन और चारित्र के संदर्भ में [णिच्छयणयस्स भासिदं] निश्चयनय द्वारा कहा [य] और [ववहारणयस्य वत्तव्वं] व्यवहारनय द्वारा कथन को [से] उस संबंध में [सुणु समासेण] संक्षेप से सुनो ।

[जह परदव्वं सेडिया] जिसप्रकार कलई परद्रव्यों (दीवाल आदि) को [अप्पणो सहावेण] अपने स्वभाव से [सेडदि हु] सफेद करती है [तह] उसीप्रकार [णादा वि] आत्मा भी [अप्पणो सहावेण] अपने स्वभाव से [परदव्वं जाणदि] परद्रव्यों को जानता है ।
[जह परदव्वं सेडिया] जिसप्रकार कलई परद्रव्यों (दीवाल आदि) को [अप्पणो सहावेण] अपने स्वभाव से [सेडदि हु] सफेद करती है [तह] उसीप्रकार [जीवो वि] आत्मा भी [सएग सहावेण] अपने स्वभाव से [परदव्वं पस्सदि] परद्रव्यों को देखता है ।
[जह परदव्वं सेडिया] जिसप्रकार कलई परद्रव्यों (दीवाल आदि) को [अप्पणो सहावेण] अपने स्वभाव से [सेडदि हु] सफेद करती है [तह] उसीप्रकार [णादा वि] आत्मा भी [सएण सहावेण] अपने स्वभाव से [परदव्वं विजहदि] परद्रव्यों को त्यागता है ।
[जह परदव्वं सेडिया] जिसप्रकार कलई परद्रव्यों (दीवाल आदि) को [अप्पणो सहावेण] अपने स्वभाव से [सेडदि हु] सफेद करती है [तह] उसीप्रकार [सम्मदिट्ठी सहावेण] सम्यग्दृष्टि स्वभाव से [परदव्वं सद्दहदि] परद्रव्यों का श्रद्धान करता है ।
[एवं दु] इस प्रकार [णाणदंसणचरित्ते] ज्ञान-दर्शन-चारित्र में [ववहारस्स विणिच्छओ] व्यवहार द्वारा निश्चय [भणिदो] कहा है [अण्णेसु वि पज्जएसु] अन्य भी पर्यायों में [एमेव णादव्वो] ऐसा ही जानो ॥३९६॥

निश्चय-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-आलोचना ही अभेद-नय से निश्चय-चारित्र

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं । (383)
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ॥397॥
कम्मं जं सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि बज्झदि भविस्सं । (384)
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाणं हवदि चेदा ॥398॥
जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं । (385)
तं दोसं जो चेददि सो खलु आलोयणं चेदा ॥399॥
णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चं पडिक्कमदि जो य । (386)
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरित्तं हवदि चेदा ॥400॥
शुभ-अशुभ कर्म अनेकविध हैं जो किये गतकाल में ।
उनसे निवर्तन जो करे वह आतमा प्रतिक्रमण है ॥३८३॥
बँधेंगे जिस भाव से शुभ-अशुभ कर्म भविष्य में ।
उससे निवर्तन जो करे वह जीव प्रत्याख्यान है ॥३८४॥
शुभ-अशुभ भाव अनेकविध हो रहे सम्प्रति काल में ।
इस दोष का ज्ञाता रहे वह जीव है आलोचना ॥३८५॥
जो करें नित प्रतिक्रमण एवं करें नित आलोचना ।
जो करें प्रत्याख्यान नित चारित्र हैं वे आतमा ॥३८६॥
अन्वयार्थ : [जं] जो [पुव्वकयं] पूर्वकाल में किये गये [सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं] अनेकप्रकार के विस्तार से विशेषित (भेद-प्रभेद सहित) वाला शुभाशुभ [कम्मं] कर्म, [तत्ते] उनसे [जो] जो [अप्पयं तु] अपने आप को [णियत्तदे] दूर रखता है, [जो सो पडिक्कमणं] वह (आत्मा) प्रतिक्रमण है ।
[जम्हि य भावम्हि] जिस भाव से [भविस्सं] भविष्यकालीन [कम्मं जं सुहमसुहं] शुभाशुभकर्म [बज्झदि] बँधता है, [तत्ते] उनसे (उन भाव से) जो [चेदा] आत्मा [णियत्तदे] निवृत्त है [सो पच्चक्खाणं हवदि] वह प्रत्याख्यान होता है ।
[संपडि य] वर्तमानकालीन [अणेयवित्थरविसेसं] अनेकप्रकार के विस्तार से विशेषित (भेद-प्रभेद सहित) [सुहमसुहमुदिण्णं] शुभाशुभकर्मों के उदय हैं,[तं दोसं जो] उनके दोषों को जो [चेददि] चेतनेवाला (भेद-ज्ञान-पूर्वक अनुभव करने वाला) है [सो खलु आलोयणं चेदा] वह आत्मा वास्तव में आलोचना है ।
[जो] जो [णिच्चं] सदा [पच्चक्खाणं] प्रत्याख्यान [कुव्वदि] करता है [य] और [णिच्चं] सदा [पडिक्कमदि] प्रतिक्रमण करता है और [णिच्चं] सदा [आलोचेयदि] आलोचना करता है [सो हु चरित्तं हवदि चेदा] वह आत्मा ही चारित्र है ।

इन्द्रियों और मन के विषयों में रमणता -- मिथ्याज्ञान

णिंदिदसंथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि । (373)
ताणि सुणिदूय रूसदि तूसदि य पुणो अहं भणिदो ॥401॥
पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो । (374)
तम्हा ण तुमं भणिदो किंचि वि किं रूससि अबुद्धो ॥402॥
असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणदि सुणसु मं ति सो चेव । (375)
ण य एदि विणिग्गहिदुं सोदविसयमागदं सद्दं ॥403॥
असुहं सुहं व रूवं ण तं भणदि पेच्छ मं ति सो चेव । (376)
ण य एदि विणिग्गहिदुं चक्खुविसयमागदं रूवं ॥404॥
असुहो सुहो व गंधो ण तं भणदि जिग्घ मं ति सो चेव । (377)
ण य एदि विणिग्गहिदुं घाणविसयमागदं गंधं ॥405॥
असुहो सुहो व रसो ण तं भणदि रसय मं ति सो चेव । (378)
ण य एदि विणिग्गहिदुं रसणविसयमागदं तु रसं ॥406॥
असुहो सुहो व फासो ण तं भणदि फुससु मं ति सो चेव । (379)
ण य एदि विणिग्गहिदुं कायविसयमागदं फासं ॥407॥
असुहो सुहो व गुणो ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव । (380)
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं तु गुणं ॥408॥
असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव । (381)
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं दव्वं ॥409॥
एयं तु जाणिऊणं उवसमं णेव गच्छदे मूढो । (382)
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धिं सिवमपत्ते ॥410॥
स्तवन निन्दा रूप परिणत पुद्गलों को श्रवण कर ।
मुझको कहे यह मान तोष-रु-रोष अज्ञानी करें ॥३७३॥
शब्दत्व में परिणमित पुद्गल द्रव्य का गुण अन्य है ।
इसलिए तुम से ना कहा तुष-रुष्ट होते अबुध क्यों ?॥३७४॥
शुभ या अुशभ ये शब्द तुझसे ना कहें कि हमें सुन ।
अर आतमा भी कर्णगत शब्दों के पीछे ना भगे ॥३७५॥
शुभ या अशुभ यह रूप तुझसे ना कहे कि हमें लख ।
यह आतमा भी चक्षुगत वर्णों के पीछे ना भगे ॥३७६॥
शुभ या अशुभ यह गंध तुम सूँघो मुझे यह ना कहे ।
यह आतमा भी घ्राणगत गंधों के पीछे ना भगे ॥३७७॥
शुभ या अशुभ यह सरस रस यह ना कहे कि हमें चख ।
यह आतमा भी जीभगत स्वादों के पीछे ना भगे ॥३७८॥
शुभ या अशुभ स्पर्श तुझसे ना कहें कि हमें छू ।
यह आतमा भी कायगत स्पर्शों के पीछे ना भगे ॥३७९॥
शुभ या अशुभ गुण ना कहें तुम हमें जानो आत्मन् ।
यह आतमा भी बुद्धिगत सुगुणों के पीछे ना भगे ॥३८०॥

शुभ या अशुभ द्रव्य ना कहें तुम हमें जानो आत्मन् ।
यह आतमा भी बुद्धिगत द्रव्यों के पीछे ना भगे ॥३८१॥
यह जानकर भी मूढ़जन ना ग्रहें उपशमभाव को ।
मंगलमती को ना ग्रहें पर के ग्रहण का मन करें ॥३८२॥

अन्वयार्थ : [पोग्गला] पुद्गल [बहुगाणि] बहुत प्रकार के [णिंदिदसंथुदवयणाणि] निन्दा और स्तुति वचनों रूप [परिणमंति] परिणमता है [ताणि सुणिदूय] उन्हें सुनकर [पुणो अहं भणिदो] 'मुझसे कहे' ऐसा मानकर फिर [रूसदि तूसदि य] रुष्ट (नाराज) और तुष्ट (प्रसन्न) होता है । [सद्दत्तपरिणदं] शब्द-रूप परिणमित [पोग्गलदव्वं] पुद्गल-द्रव्य और [तस्स जदि गुणो अण्णो] उसके गुण यदि अन्य (तुझसे भिन्न) हैं [तम्हा ण तुमं भणिदो किंचि वि] तो तुझसे तो कुछ भी नहीं कहा गया, [किं रूससि अबुद्धो] अज्ञानी तू रोष क्यों करता है ?

[असुहो सुहो व सद्दो] शुभ या अशुभ शब्द [ण तं भणदि] तुझसे नहीं कहते कि [सुणसु मं] तू मुझे सुन और [सोदविसयमागदं सद्दं] कर्ण इन्द्रिय के विषय में आये हुए शब्दों द्वारा [ति सो चेव ण य एदि विणिग्गहिदुं] तू (आत्मा) भी खिंचकर (अपने स्थान से च्युत होकर, जबरदस्ती) उन्हें ग्रहण नहीं करता ।

[असुहं सुहं व रूवं] शुभ या अशुभ रूप [ण तं भणदि] तुझसे नहीं कहते कि [पेच्छ मं] तू मुझे देख और [चक्खुविसयमागदं रूवं] चक्षु इन्द्रिय के विषय में आये हुए रूप द्वारा [ति सो चेव ण य एदि विणिग्गहिदुं] तू (आत्मा) भी खिंचकर (अपने स्थान से च्युत होकर, जबरदस्ती) उन्हें ग्रहण नहीं करता ।

[असुहो सुहो व गंधो] शुभ या अशुभ गन्ध [ण तं भणदि] तुझसे नहीं कहते कि [जिग्घ मं] तू मुझे सूँघ और [घाणविसयमागदं गंधं] घ्राण इन्द्रिय के विषय में आये हुए गन्ध द्वारा [ति सो चेव ण य एदि विणिग्गहिदुं] तू (आत्मा) भी खिंचकर (अपने स्थान से च्युत होकर, जबरदस्ती) उन्हें ग्रहण नहीं करता ।

[असुहो सुहो व रसो] शुभ या अशुभ रस [ण तं भणदि] तुझसे नहीं कहते कि [रसय मं] तू मेरा रस ले और [रसणविसयमागदं तु रसं] रसना इन्द्रिय के विषय में आये हुए रस द्वारा [ति सो चेव ण य एदि विणिग्गहिदुं] तू (आत्मा) भी खिंचकर (अपने स्थान से च्युत होकर, जबरदस्ती) उन्हें ग्रहण नहीं करता ।

[असुहो सुहो व फासो] शुभ या अशुभ स्पर्श [ण तं भणदि] तुझसे नहीं कहते कि [फुससु मं] तू मुझे स्पर्श कर और [कायविसयमागदं फासं] स्पर्श इन्द्रिय के विषय में आये हुए स्पर्श द्वारा [ति सो चेव ण य एदि विणिग्गहिदुं] तू (आत्मा) भी खिंचकर (अपने स्थान से च्युत होकर, जबरदस्ती) उन्हें ग्रहण नहीं करता ।

[असुहो सुहो व गुणो] शुभ या अशुभ गुण [ण तं भणदि] तुझसे नहीं कहते कि [बुज्झ मं] तू मुझे जान और [बुद्धिविसयमागदं तु गुणं] बुद्धि के विषय में आये हुए गुणों द्वारा [ति सो चेव ण य एदि विणिग्गहिदुं] तू (आत्मा) भी खिंचकर (अपने स्थान से च्युत होकर, जबरदस्ती) उन्हें ग्रहण नहीं करता ।

[असुहो सुहो व दव्वं] शुभ या अशुभ द्रव्य [ण तं भणदि] तुझसे नहीं कहते कि [बुज्झ मं] तू मुझे जान और [बुद्धिविसयमागदं दव्वं] बुद्धि के विषय में आये हुए द्रव्यों द्वारा [ति सो चेव ण य एदि विणिग्गहिदुं] तू (आत्मा) भी खिंचकर (अपने स्थान से च्युत होकर, जबरदस्ती) उन्हें ग्रहण नहीं करता ।

[एयं तु जाणिऊणं] ऐसा जानकर भी [मूढो] मूढ़ (जीव) [उवसमं णेव गच्छदे] उपशम-भाव को प्राप्त नहीं होता और [बुद्धिं सिवमपत्ते] कल्याणकारी बुद्धि (सम्यग्ज्ञान / बोध) को प्राप्त नहीं होता [च] और [य सयं] स्वयं [णिग्गहमणा परस्स] पर-पदार्थों को ग्रहण करने का मन करता है ।

अज्ञान-चेतना बंध का कारण

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणदि जो दु कम्मफलं । (387)
सो तं पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥411॥
वेदंतो कम्मफलं मए कदं मुणदि जो दु कम्मफलं । (388)
सो तं पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥412॥

वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा । (389)
सो तं पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥413॥
जो कर्मफल को वेदते निजरूप मानें करमफल ।
हैं बाँधते वे जीव दु:ख के बीज वसुविध करम को ॥३८७॥
जो कर्मफल को वेदते मानें करमफल मैं किया ।
हैं बाँधते वे जीव दु:ख के बीज वसुविध करम को ॥३८८॥
जो कर्मफल को वेदते हों सुखी अथवा दु:खी हों ।
हैं बाँधते वे जीव दु:ख के बीज वसुविध करम को ॥३८९॥

अन्वयार्थ : [वेदंतो कम्मफलं] कर्म के फल को वेदता हुआ [जो दु] जो भी [कम्मफलं] कर्म के फल को [अप्पाणं कुणदि] निज-रूप (एकत्व-बुद्धि) करता है [सो तं पुणो वि] तो फिर वह [अट्ठविहं] आठ प्रकार के [दुक्खस्स बीयं] दु:ख के बीज (कर्मों) से [बंधदि] बंधता है ।

[वेदंतो कम्मफलं] कर्म के फल को वेदता हुआ [जो दु] जो भी [मए कदं मुणदि] मैंने (कर्म-फल) किया ऐसा मानता है [सो तं पुणो वि] तो फिर वह [अट्ठविहं] आठ प्रकार के [दुक्खस्स बीयं] दु:ख के बीज (कर्मों) से [बंधदि] बंधता है ।

[वेदंतो कम्मफलं] कर्म के फल को वेदता हुआ [जो चेदा] जो आत्मा [सुहिदो दुहिदो य] सुखी और दु:खी होता है [सो तं पुणो वि] तो फिर वह [अट्ठविहं] आठ प्रकार के [दुक्खस्स बीयं] दु:ख के बीज (कर्मों) से [बंधदि] बंधता है ।

अब इसी अर्थ की गाथा कहते हैं --

सत्थं णाणं ण हवदि जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि । (390)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा बेंति ॥414॥
सद्दो णाणं ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि । (391)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा बेंति ॥415॥
रूवं णाणं ण हवदि जम्हा रूवं ण याणदे किंचि । (392)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा बेंति ॥416॥
वण्णो णाणं ण हवदि जम्हा वण्णो ण याणदे किंचि । (393)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा बेंति ॥417॥
गंधो णाणं ण हवदि जम्हा गंधो ण याणदे किंचि । (394)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा बेंति ॥418॥
ण रसो दु हवदि णाणं जम्हा दु रसो ण याणदे किंचि । (395)
तम्हा अण्णं णाणं रसं च अण्णं जिणा बेंति ॥419॥
फासो ण हवदि णाणं जम्हा फासो य याणदे किंचि । (396)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा बेंति ॥420॥
कम्मं णाणं ण हवदि जम्हा कम्मं ण याणदे किंचि । (397)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा बेंति ॥421॥
धम्मो णाणं ण हवदि जम्हा धम्मो ण याणदे किंचि । (398)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा बेंति ॥422॥
णाणमधम्मो ण हवदि जम्हाधम्मो ण याणदे किंचि । (399)
तम्हा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा बेंति ॥423॥
कालो णाणं ण हवदि जम्हा कालो ण याणदे किंचि । (400)

तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा बेंति ॥424॥
आयासं पि ण णाणं जम्हायासं ण याणदे किंचि । (401)
तम्हायासं अण्णं अण्णं णाणं जिणा बेंति ॥425॥
णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जम्हा । (402)
तम्हा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥426॥
जम्हा जाणदि णिच्चं तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी । (403)
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥427॥
णाणं सम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं । (404)
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥428॥
शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही शास्त्र अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९०॥
शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही शब्द अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९१॥
रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही रूप अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९२॥
वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही वर्ण अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९३॥
गंध ज्ञान नहीं है क्योंकि गंध कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही गंध अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९४॥
रस नहीं है ज्ञान क्योंकि रस भी कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही रस अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९५॥
स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही स्पर्श अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९६॥
कर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि कर्म कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही कर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९७॥
धर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि धर्म कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही धर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९८॥
अधर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही अधर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९९॥
काल ज्ञान नहीं है क्योंकि काल कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही काल अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥४००॥
आकाश ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥४०१॥
अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि वे अचेतन जिन कहे ।
इसलिए अध्यवसान अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥४०२॥
नित्य जाने जीव बस इसलिए ज्ञायकभाव है ।
है ज्ञान अव्यतिरिक्त ज्ञायकभाव से यह जानना ॥४०३॥

ज्ञान ही समदृष्टि संयम सूत्र पूर्वगतांग भी ।
सद्धर्म और अधर्म दीक्षा ज्ञान हैं - यह बुध कहें ॥४०४॥

अन्वयार्थ : [सत्थं णाणं ण हवदि] शास्त्र ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [सत्थं ण याणदे किंचि] शास्त्र कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं सत्थं] शास्त्र अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[सद्दो णाणं ण हवदि] शब्द ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [सद्दो ण याणदे किंचि] शब्द कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं सद्दं] शब्द अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[रूवं णाणं ण हवदि] रूप ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [रूवं ण याणदे किंचि] रूप कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं रूवं] रूप अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[वण्णो णाणं ण हवदि] वर्ण ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [वण्णो ण याणदे किंचि] वर्ण कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं वण्णं] वर्ण अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[गंधो णाणं ण हवदि] गंध ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [गंधो ण याणदे किंचि] गंध कुछ जानती नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं गंधं] गन्ध अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[ण रसो दु हवदि णाणं] रस ज्ञान नहीं होता [जम्हा दु] क्योंकि [रसो ण याणदे किंचि] रस कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं रसं च] और रस अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[फासो ण हवदि णाणं] स्पर्श ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [फासो य याणदे किंचि] स्पर्श कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं फासं] स्पर्श अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[कम्मं णाणं ण हवदि] कर्म ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [कम्मं ण याणदे किंचि] कर्म कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं कम्मं] कर्म अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[धम्मो णाणं ण हवदि] धर्म ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [धम्मो ण याणदे किंचि] धर्म कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं धम्मं] धर्म अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[णाणमधम्मो ण हवदि] अधर्म ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [अधम्मो ण याणदे किंचि] अधर्म कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं अधम्मं] अधर्म अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[कालो णाणं ण हवदि] काल ज्ञान नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [कालो ण याणदे किंचि] काल कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अण्णं कालं] काल अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[आयासं पि ण णाणं] आकाश भी ज्ञान नहीं [जम्हा] क्योंकि [आयासं ण याणदे किंचि] आकाश कुछ जानता नहीं है [तम्हा] वैसे ही [आयासं अण्णं] आकाश अन्य है [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [जिणा बेंति] ऐसा जिनदेव कहते हैं ।

[णज्झवसाणं णाणं] अध्यवसान ज्ञान नहीं [जम्हा] क्योंकि [अज्झवसाणं अचेदणं] अध्यवसान अचेतन है [तम्हा] वैसे ही [अण्णं णाणं] ज्ञान अन्य है [अज्झवसाणं तहा अण्णं] तथा अध्यावसान अन्य है (ऐसा जिनदेव कहते हैं) ।

[जम्हा जाणदि णिच्चं] चूँकि निरन्तर जानता है [तम्हा] इसलिए यह [जाणगो] ज्ञायक [जीवो दु] जीव [णाणी] ज्ञानी (ज्ञानस्वरूप) है [णाणं च जाणयादो] और ज्ञान ज्ञायक से [अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं] अव्यतिरिक्त (अभिन्न) है - ऐसा जानो ।

[बुहा] बुधजन (ज्ञानीजन) [णाणं सम्मादिट्ठिं दु] ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, [संजमं] संयम, [सुत्तमंगपुव्वगयं] अंगपूर्वगत सूत्र, [धम्माधम्मं च] धर्म-अधर्म (पुण्य-पाप) [तहा पव्वज्जं] और प्रव्रज्या (दीक्षा) [अब्भुवंति] मानते हैं ।

ज्ञान आहारक क्यों नहीं?

अत्ता जस्सामुत्ते ण हु सो आहारगो हवदि एवं । (405)
आहारो खलु मुत्ते जम्हा सो पोग्गलमओ दु ॥429॥
णवि सक्कदि घेत्तुं जं ण विमोत्तुं जं च जं परद्दव्वं । (406)
सो कोवि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वा वि ॥430॥

तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गेण्हदे किंचि । (407)
णेव विमुंचदि किंचि वि जीवाजीवाण दव्वाणं ॥431॥
आहार पुद्गलमयी है बस इसलिए है मूर्तिक ।
ना अहारक इसलिए ही यह अमूर्तिक आतमा ॥४०५॥
परद्रव्य का ना ग्रहण हो ना त्याग हो इस जीव के ।
क्योंकि प्रायोगिक तथा वैस्रसिक स्वयं गुण जीव के ॥४०६॥
इसलिए यह शुद्धातमा पर जीव और अजीव से ।
कुछ भी ग्रहण करता नहीं कुछ भी नहीं है छोड़ता ॥४०७॥

अन्वयार्थ : [अत्ता] आत्मा [जस्सामुत्ते] चूंकि अमूर्तिक है [एवं] इसप्रकार [हु सो] वह वस्तुत: [आहारगो] आहारक [ण] नहीं [हवदि] होती [आहारो] आहार [खलु] स्पष्टत: [मुत्ते] मूर्तिक है [जम्हा] क्योंकि [सो पोग्गलमओ दु] वह (आहार) पुद्गलमय है ।

[परद्दव्वं] परद्रव्य को [णवि] न तो [जं] उसे [घेत्तुं] ग्रहण कर [सक्कदि] सकते हैं [च] और [ण विमोत्तुं जं] न वह छोड़ा जा सकता है क्योंकि [सो कोवि य तस्स] उस (आत्मा) के कोई ऐसे ही [पाउगिओ विस्ससो वा] प्रायोगिक और वैस्रसिक [गुणो] गुण हैं ।

[तम्हा दु] इसलिए [जो विसुद्धो चेदा] जो विशुद्धात्मा है [सो] वह [जीवाजीवाण दव्वाणं] जीव और अजीव (पर) द्रव्यों में [णेव गेण्हदे किंचि] कुछ भी ग्रहण नहीं करते [णेव विमुंचदि किंचि वि] न कुछ छोड़ते ही हैं ।

द्रव्य-लिंग भी निश्चय से मुक्ति का कारण नहीं

पासंडीलिंगाणि व गिहिलिंगाणि व बहुप्पयाराणि । (408)
घेत्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गो त्ति ॥432॥
ण दु होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा । (409)
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्तणि सेवंति ॥433॥
ण वि एस मोक्खमग्गो पासंडीगिहिमयाणि लिंगाणि । (410)
दंसणणाणचरित्तणि मोक्खमग्गं जिणा बेंति ॥434॥
तम्हा जहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिदे । (411)
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥435॥
ग्रहण कर मुनिलिंग या गृहिलिंग विविध प्रकार के ।
यह लिंग ही है मुक्तिमग यह कहें कतिपय मूढ़जन ॥४०८॥
पर मुक्तिमग ना लिंग क्योंकि लिंग तज अरिहंत जिन ।
निज आत्म अरु सद्-ज्ञान-दर्शन-चरित का सेवन करें ॥४०९॥
बस इसलिए गृहिलिंग या मुनिलिंग ना मग मुक्ति का ।
जिनवर कहें बस ज्ञान-दर्शन-चरित ही मग मुक्ति का ॥४१०॥
बस इसलिए अनगार या सागार लिंग को त्यागकर ।
जुड़ जा स्वयं के ज्ञान-दर्शन-चरणमय शिवपंथ में ॥४११॥

अन्वयार्थ : बहुत प्रकार के [पासंडीलिंगाणि व गिहिलिंगाणि व] पाखण्डी (मुनि) लिंगों अथवा गृहस्थ लिंगों को [घेत्तुं] ग्रहण करके [मूढा] मूढ़जन यह [वदंति] कहते हैं कि यह [लिंगमिणं] लिंग ही [मोक्खमग्गो त्ति] मोक्षमार्ग है ।

[तु] परन्तु [लिंगं] लिंग [मोक्खमग्गो] मोक्षमार्ग [ण दु होदि] नहीं होता क्योंकि [अरिहा] अरिहंतदेव [देहणिम्ममा] देह से निर्मम वर्तते हुए [लिंगं मुइत्तु] लिंग को छोड़कर (दृष्टि हटाकर) [दंसणणाणचरित्तणि] दर्शन-ज्ञान-चारित्र का [सेवंति] सेवन करते हैं ।

[पासंडीगिहिमयाणि लिंगाणि] मुनियों और गृहस्थों के लिंग (वेष) [ण वि एस मोक्खमग्गो] यह मोक्षमार्ग नहीं है [दंसणणाणचरित्तणि] दर्शन-ज्ञानचारित्र को ही [मोक्खमग्गं] मोक्षमार्ग [जिणा] जिनदेव [बेंति] कहते हैं ।

[तम्हा] इसलिए [सागारणगारएहिं वा] गृहस्थों और मुनियों द्वारा [गहिदे] ग्रहण किये गये [जहित्तु लिंगे] लिंगों को छोड़कर [मोक्खपहे] मोक्षमार्गरूप [दंसणणाणचरित्ते] दर्शन-ज्ञान-चारित्र में [अप्पाणं जुंज] आत्मा (अपने) को लगा ।

आत्म-रमणता की प्रेरणा

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय । (412)
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वसु ॥436॥
मोक्षपथ में थाप निज को चेतकर निज ध्यान धर ।
निज में ही नित्य विहार कर परद्रव्य में न विहार कर ॥४१२॥

अन्वयार्थ : हे भव्य ! तू [मोक्खपहे] मोक्षमार्ग में [अप्पाणं] अपने (आत्मा) को [ठवेहि] स्थापित कर [तं चेव झाहि तं चेय] उसका ही ध्यान कर, उसी को चेत (अनुभव कर) और [तत्थेव विहर णिच्चं] उसमें (निज-आत्मा में) ही सदा विहार कर [मा विहरसु अण्णदव्वसु] पर-द्रव्यों में विहार मत कर ।

भाव-लिंग के बिना द्रव्य-लिंग द्वारा समयसार का ग्रहण नहीं

पासंडीलिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु । (413)
कुव्वंति जे ममत्तिं तेहिं ण णादं समयसारं ॥437॥
ग्रहण कर मुनिलिंग या गृहिलिंग विविध प्रकार के ।
उनमें करें ममता, न जानें वे समय के सार को ॥४१३॥

अन्वयार्थ : [बहुप्पयारेसु] बहुत प्रकार के [पासंडीलिंगेसु व] मुनिलिंगों या [गिहिलिंगेसु व] गृहस्थलिंगों में [कुव्वंति जे ममत्तिं] जो ममत्व करते हैं [तेहिं ण णादं समयसारं] उन्होनें समयसार को नहीं जाना ।

परमार्थ से लिंग मोक्षमार्ग नहीं

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे । (414)
णिच्छयणओ ण इच्छदि मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥438॥
व्यवहार से ये लिंग दोनों कहे मुक्तीमार्ग में ।
परमार्थ से तो नहीं कोई लिंग मुक्तीमार्ग में ॥४१४॥

अन्वयार्थ : [ववहारिओ पुण णओ] व्यवहारनय [दोण्णि वि लिंगाणि] दोनों ही लिंगों (मुनिलिंग और गृहीलिंग) को [भणदि मोक्खपहे] मोक्षमार्ग कहता है; परन्तु [णिच्छयणओ] निश्चयनय [सव्वलिंगाणि] सभी लिंगों को [मोक्खपहे] मोक्षमार्ग [ण इच्छदि] नहीं मानता ।

ग्रन्थ समाप्ति और इसके पढ़ने का फल

जो समयपाहुडमिणं पढिदूणं अत्थतच्चदो णादुं । (415)
अत्थे ठाही चेदा सो होही उत्तमं सोक्खं ॥439॥
पढ़ समयप्राभृत ग्रंथ यह तत्त्वार्थ से जो जानकर ।
निज **अर्थ** में एकाग्र हों वे परमसुख को प्राप्त हों ॥४१५॥

अन्वयार्थ : [जो चेदा] ज्ञायक (चेतयिता) [समयपाहुडमिणं] इस समयसार को [पढिदूणं] पढ़कर [अत्थतच्चदो णादुं] अर्थ और तत्त्व को जानकर [अत्थे ठाही] अर्थ में स्थित होगा [सो होही उत्तमं सोक्खं] वह उत्तम सुखी होगा ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट